प्रतिज्ञा पाण्डव

(प्रबन्ध काव्य)



श्री बबुआजी झा 'अज्ञात'

श्री

प्रतिज्ञा पाण्डव

(महाकाव्य)

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः
स्वर्ग लोके च कामधुग् भवति

श्रीबबुआजीझा 'अज्ञात'

प्रकाशक—

कैं गोदावरी-बबुआजीझा'अज्ञात' मेमोरियल मेडिकल ट्रष्ट एण्ड रिसर्च सेन्टर, मुंबई।

डॉ० श्री पङ्कज झा

ए, २०२ ए. विंग

सागर ज्योति अपार्टमेण्ट

ठाकूर्ली पूर्व

ठाणे (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण—जानकी नवमी १९९५

मूल्य—पचास टाका

मुद्रक—कुमार प्रिंटिंग प्रेस, दरभंगा।

अभिज्ञप्ति : कवि ओ काव्य

ज्ञात रहैछ काञ्चनी लक्ष्मीक पुत्र, जनिक सुवर्ण - अलंकारक चुम्बकीय आकर्षणमे जन-मनक लौह-कण सहजहिँ आकर्षित होइत रहैछ। विज्ञात बनैछ शिव-उर पदाक्रान्ता कृष्णा कालीक सिंहासनी शक्ति-पुत्र, जकर दण्डानुशासन क्षुब्ध - लुब्ध दलकेँ दलमलित कयने चलैछ। किन्तु सर्वशुक्ला सरस्वतीक एकनिष्ठ वरपुत्र बहुधा अज्ञाते रहैत छथि, भने हुनक सुवर्ण-लेखनी भवभूतिक शब्दमे 'उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालोऽह्ययं निरवधि-विपुलाच पृथ्वी'क प्रतीक्षा-रत बनल रहथु।

ओहूमे विशेषतया मैथिली-भारतीक उपासनामे जे निरत रहैत अयलाह हुनका वर्त्तमान भारतक वातावरणमे आवृत-अज्ञात रहबाक नियति जेना लिखले रहैत छनि। सुतरां प्रकृत कवि अज्ञातजी जीवनक नवम दशकमे अपन 'प्रतिज्ञा-पाण्डव'क रचनामे कहि उठैत छथि—

हंसवाहिनी भए सकैत छी अहीँ सहायक साँच।
दीन पुजारीकेर जैत मिलि तखन पाँचमे पाँच।।

से सत्य, किन्तु पंचतत्त्वकेँ पंचत्वमे मिलबाक नियति अछितहुँ कविक रससिद्ध कवित्वक प्रति एक दिन कोनहु सहृदयकेँ ई उद्‌गार ~~प्रकट करबाक~~ होयतनि जे—

'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्'

अज्ञातजी अपन पूर्वप्रकाशित 'रुक्मिणी-परिणय' महाकाव्यमे आत्म-प्रसंग ज्ञात करबैत छथि—

कोसी नदिक निकट अछि वसती बाथ
जन्मभूमि जत जीवन नियतिक हाथ।

महिसिक पीठ पड़ल किछु चित पित मारि
कविता एखन लिखै छी खेतक आरि ।।
कवि-समाजसँ रहितहुँ सभ दिन कात
नाम अपन हम रखलहुँ तेँ अज्ञात ।
विकट प्रश्नमय जीवन रहलहुँ व्यस्त
शिवक जटामे सुरसरि सम हम अस्त ।।

एहिसँ ज्ञात होइछ जे कवि अपन प्रथम वयसमे कोशी-अंचलक अभिशप्त भूमिपुत्रक रूपमे पशुचारण एवं कोदारि-खुरपीक संचालन करैत खेतक आरि-पर बैसल कविता गुनगुनाइत रहल छथि। प्रकृतिक मुक्त वातावरणमे मिथि-लाक खेतिहरक बाढ़ि-रौदीक भिजल-टटायल जीवनक कटु अनुभव करैत प्रथम मधुवयस बितबैत ओ तखनहु कविताक करुण तान लगबैत रहल छथि। अथच ओही सुर-धुनिक प्रच्छन्न प्रवर्तनासँ अपन बीसीक बाद ओ विद्यारंभ कय जाहि श्रमेँ आचार्यत्व प्राप्त कयलनि, विद्यालयमे विद्यादान करैत साहित्य-सरस्वतीक साधना कयलनि, ओकरे सिद्धिस्वरूप अपन अवकाश-जीवनकेँ सार्थक करैत काव्य-रचनामे संलग्न छथि; ई ज्ञात कय एहि 'अज्ञात' उपनामा कवि-अग्रणी पं० श्री बबुआजीझाक व्यक्तित्वक प्रति, एवं अद्यतन बिरानबे वर्षक वृद्ध वयसहुमे हिनक उन्मीलत्प्रतिभा, व्यापक व्युत्पत्ति एवं प्रतिबद्ध अभ्यस्तता परेखि ककर मस्तक श्रद्धा-नत नहि होइछ ? एहू परिणत वयसमे स्फूर्तिशील, धवल शिर, तनल तनु, श्याम-अभिराम कर्मठ दण्डी व्यक्तित्वकेँ एवं हिनक सामयिक-तासँ ओतप्रोत सांस्कृतिक अस्मितासँ संभृत रचना-सौष्ठवक कृतित्वकेँ अभि-नन्दित करैत कृतकृत्य छी।

पुरातन महाभारतक कथा-वस्तुकेँ मध्यकालीन छंद-बंध ओ रीति-अलं-कृतिक परिधानमे समसामयिकताक समस्या-वितानमे प्रस्तुत 'प्रतिज्ञा-पाण्डव' निबन्ध-काव्यक कवि रचनाक सोद्देश्यता व्यक्त करैत कहैत छथि—

भेल भारतक लेल समर सभ विधि संहारी
रत्न-राशि चल गेल, रहल किछु कोइला कारी।

समरक परिणामके लोकोक्तिक दृष्टान्ते प्रस्तुत करैत, युद्धक ज्वालामे मानवताके पतंग बनैत देखि कवि-हृदयमे रहि-रहि कऽ प्रश्न उमड़ि उठैछ—

अछि करैत विद्वेष किए मानवसँ मानव ?
किए उकाठक ठाठ रचय बनि दुर्दम दानव ?
युद्ध विनाशक हेतु सनातन विश्व जनै अछि !
होइतहुँ बुद्धि प्रधान मनुज पुनि युद्ध ठनै अछि ।

बुद्धिप्रधान मानवके युद्धविधानक लेल दुष्प्रेरक रहैछ ओकरा हृदयमे परस्वत्व-हरणक लालसा, तकर अभिव्यक्ति दैत कविक उद्गार अछि —

युगयुग अनकर स्वत्व अन्य जन हरितहिँ रहलै,
सुजन संग जन दुष्ट वंचना करितहिँ रहलै ।
युग-युग अनकर स्वत्व अन्य जन जोहितहिँ रहलै,
तेँ भूतलमे युद्ध सनातन होइतहिँ रहलै ।।

एही कारणे युग-युगीन युद्ध - ज्वालासँ उत्तप्त 'मानवता उद्विग्न भय आइयो त्राण तकै अछि ।' त्राणक तँ एकमात्र प्रशस्त मार्ग 'अहिंसा-सत्यमस्तेय' आदि युगानुकूल मूल धर्मक प्रति संकेत करैत कवि कहैत छथि —

युग-युग ठठरी बदलि बदलि नव-नव लय आबथि धर्म ।
युग-अनुरूप स्वरूपक भेदहु जनहित अविचल धर्म ।।

एहि 'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे'क प्रतिश्रोता लीलापुरुषके कवि-कामना उद्दिष्ट अछि --

जीव जीबथ देब आबहु देथु ईश्वर ज्ञान
भावना अछि, कामना अछि, विश्वजन-कल्याण ।

एवंप्रकारे युद्धक विपरीत विश्वशान्तिक आवाहनके मुख्य लक्ष्य राखि कवि एहि काव्यक उद्देश्यपरताके स्पष्ट कयने छथि ।

युद्धकेर परिणामसँ जग सीखि जँ किछु लेत ।
धारणा अछि, क्यो अनीतिक बाट पद नहि देत ।।

विश्वकल्याणक एहि भावनासँ 'शिवेतरक्षतये' काव्यक कल्पनामे सत्यक संग शिवभावनाक उद्भावना कर्षकक आकर्षक रूपकमे निम्नांकित रूपेँ अभिव्यक्त करैत छथि—

मनक खेतमे चारु - विचारक उन्नत फसिल लगौत।
धैर्यक चारू कात आरि दय प्रेमक पानि पटौत॥
सद्गुण-ग्रामक खाद कालपर सोचि-समुझि छिड़ियौत।
सुख-शान्तिक उपजा तकरा घर कहू किए नहि औत ?

'प्रतिज्ञा-पाण्डव' एकादशसर्गात्मक महाकाव्यक अङ्गी रस अछि वीर। नायक छथि पाण्डव प्रधान धर्मराज, खलनायक कौरव प्रधान दुर्योधन। मुख्य नायिका छथि अपमानिता द्रौपदी, सपक्ष लीलापुरुष कृष्ण ओ नीतिकार विदुर आ विपक्ष छथि कर्ण आदि दुर्दान्त योद्धा ओ शकुनि प्रभृति कुटिल नीतिक अनुरोद्धा। कथा-वस्तु महाभारतीय सभापर्व पर आधृत अछि। राजनीति-समाजनीति - अर्थनीतिक संग मानवीय वृत्ति-प्रवृत्तिक विश्लेषणसँ पुरावृत्तकेँ समसामयिक समस्याक समाधानक दिशा संदर्शित अछि। कवि बड़ निपुणतासँ प्राचीन कथाकेँ वर्तमानयुगीन कथा - प्रथासँ तेना ओतप्रोत कयने छथि, लाक्षणिक काव्य-बन्धनकेँ वैचारिक अनुबन्धनसँ तेना सम्बद्ध कयने छथि जे कविकर्म सर्वथा नैतिक मर्म सँ उर्वरित भऽ आयल अछि।

कथागत पक्ष-विपक्षक परिचय दैत कवि कहैत छथि—

छला पाण्डुनृप - पुत्र युधिष्ठिर शान्ति-सुधाकर
सत्य जेना साकार रहथि सभ सद्गुण आकर।
अनुग अनुज छथि भीम नकुल सहदेव धनंजय
ज्ञानक अनुगत होथि जेना पुरुषार्थ चतुष्टय॥
दुर्योधन सौ भाइ छलनि पितिऔत पाण्डवक
कुटिल क्रूर अवतार जेना छल पाप-प्रपंचक।
दुःशासन ओ कर्ण - शकुनि सन जन - सहचारी
अग्निक संग बसात यथा जनपदसंहारी॥

ओहि कालक शासन-तन्त्रक विविध रूपक चित्रण करैत कवि बिकछबैत छथि। गणतन्त्रक आदर्श, यथा—

गणतन्त्रक शासन अछि देशक मध्य अनेको ठाम
कृष्णक द्वारा द्वारवतीमे सबसँ बढ़ि अभिराम।
अशन-वसन बिनु दीन-दुखी नहि रहल कतहु कयो व्यक्ति
राज्यक उन्नति लेल लगौने अछि सभ अविचल शक्ति।।

जननियंत्रित राजतन्त्र—

दोसर पाण्डवलोकनि चलाबथि तदनुरूप निज राज
जनप्रतिनिधि सभ जेना कहै छथि तेना करै छथि काज
नित नूतन उत्थान समाजक नित नूतन कल्याण
परम उदार व्यवस्थासँ अछि जन मन मुदित महान्।

पुनः जरासन्ध ओ दुर्योधनक रूपमे जनतंत्रविरोधी अधिनायक तन्त्रक दुर्बलतापर कविक उक्ति अछि—

गणतंत्रक नवनीति छलै सभतरि सुखकारी
जरासंध मगधेश तकर छल बाधक भारी।।

फलतः—

लोकक संख्या गेल बहुत बढ़ि, गेल बहुत बढ़ि पाप
हैत तकर परिणाम अवश्ये विपुल शोक - सन्ताप।
कलिकालक अवतार सुयोधन सत्तो द्यूत करौत
अन्त युद्धसँ भारतकेँ ओ दुर्बल दीन बनौत।।

एहिमे जनसंख्या - वृद्धिक संग कलिधर्मी सुयोधनक द्यूतादि कलह-मूलक युद्ध-संभावनासँ देशक दुर्दशाक परिणति संकेतित अछि। शासनमे नीतिसिद्धान्तक त्याग, अर्थकामक लोलुपतापर कटु टिप्पणी ओ सामाजिक विषमता, वर्गीय विद्वेष, सत्ताक दुरुपयोग, बुद्धिजीवी नायक लोकनिक अन्याय दुराचरणपर मौनावलम्बन आदि पर तीक्ष्ण कटाक्षपात अछि। विदुर ओ कणिकक वचनमे दक्षिण ओ वामपक्षक विचार-चिन्तन द्वारा समकालीन राजनीतिक वादकेँ उजागर कयल गेल अछि। संक्षेपमे कविकर्मकेँ नैतिक मर्मसँ कुशलतापूर्वक

अनुस्यूत करैत महाभारतकालीन घटनासँ वर्तमानकालिक राजनीतिक संरचनाकेँ अनुकलित करबामे कविक निपुणता सर्ग-सर्गमे निखरि रहल अछि।

एहि प्रकारेँ भावपक्षक शिव-साधनामे कलापक्षक सौन्दर्यभावना एहि महाकाव्यकेँ विशेष रोचकता प्रदान कयलक अछि। उपयुक्त शब्द-गुंफन, वार्णिक-मात्रिक छंद-बंधन, रससंभूत व्यजना वृत्ति एवं ओज माधुर्य एवं प्रसाद गुणक सन्निवेश ओ यथास्थान उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा-अर्थान्तरन्यास आदि विविध अलंकारक उचित सन्निवेश एवं सर्गानुकूल पद - संघटनाक रीति काव्यक सौन्दर्य अशेष रूपेँ प्रसाधित कयलक अछि। सूक्ति-लोकोक्तिक प्रचुर प्रयोगसँ रचना अत्यन्त रोचक अछि। भाषामे तत्समक संग ठेठ शब्दक सुचारु प्रयोगक उदाहरण काव्यक अंश-अंशमे द्योतित अछि। 'हाथ काँकन नहि आरसि काज।' सहृदय जनसँ निवेदन जे—

'स्वादयन्तु रसगर्भ निर्भरं काव्यमर्मरसिका यथेप्सितम्'

मैथिली मंदिर, दरभंगा
संस्कृत दिवस—१९९४

—सुरेन्द्र झा 'सुमन'

प्रकाशकीय

परम पूज्य हमर पितामहक 'प्रतिज्ञा पाण्डव' बहुत दिनसँ प्रकाशनक बाट ताकि रहल छल। हिनक पहिल महाकाव्य 'रुक्मिणी-परिणय'क प्रकाशक मैथिली अकादमी, पटना, एहू महाकाव्यक प्रकाशनक निर्णय लेलक। बहुत दिन धरि पाण्डुलिपि ओतऽ पड़ल रहल, किन्तु ओहि बीच अकादमीपर दुष्ट ग्रहक दृष्टि पड़लैक आ प्रकाशन-कार्य स्थगित भऽ गेलैक।

एहि विशिष्ट कृतिकेँ प्रकाशनक गौरव एही संस्थाकेँ भेटबाक छलैक, से भेटलैक आ ताहिसँ हमरालोकनि गौरवान्वित छी।

एकर विशिष्ट भूमिकाक लेल परम मनीषी विद्वान् आचार्य श्री सुरेन्द्रझा 'सुमन'जीक समक्ष नतमस्तक छी।

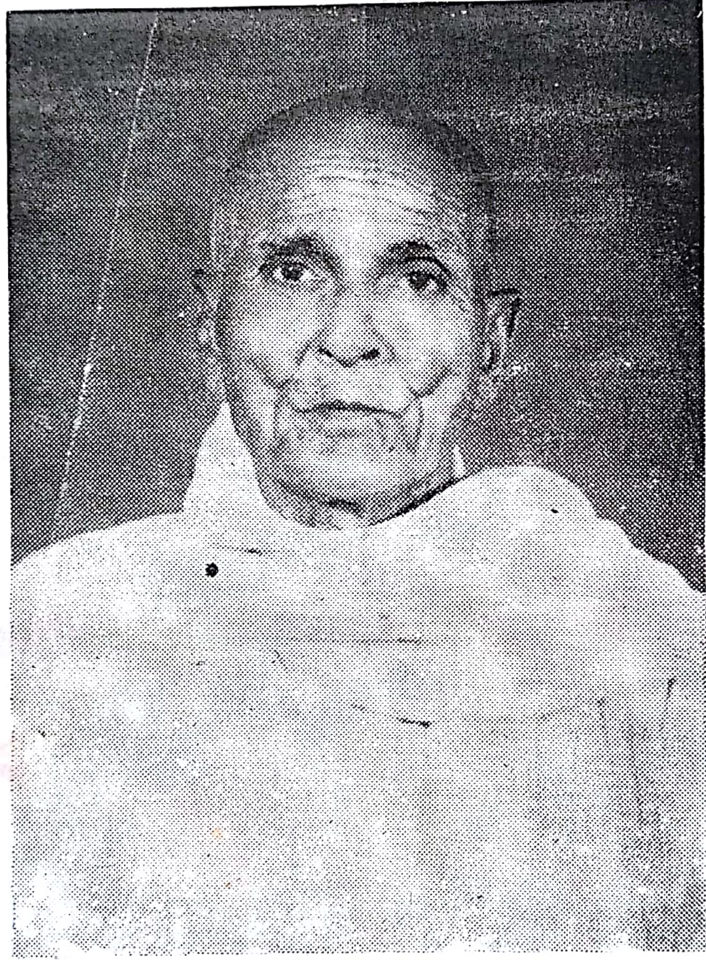
हम एकर प्रकाशनक भार मामा डॉ० प्रो० श्री नवीनचन्द्र मिश्रजीकेँ दऽ निश्चित भऽ गेलहुँ। मैथिलीक यशस्वी सुकवि ओ मूर्धन्य विद्वान् पं० श्री चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'जीक आत्मीयता ओ तत्परताक अभावमे एकर सुरुचिपूर्ण प्रकाशन असम्भवे छल। बाबाक दोसर आत्मीय डॉ० श्री भीमनाथ झाक अविस्मरणीय सहयोग सेहो प्राप्त भेल अछि। बाबाक प्रति हिनकालोकनिक श्रद्धाभावे एकर कारण थिक। हम हिनकालोकनिक सहयोगक लेल हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करैत छी। संगहि सर्व श्री सरोजानन्द झा, आनन्द झा, राहुल ओ पुष्करक श्रम ओ सहयोग केँ सेहो बिसरल नहि जा सकैत अछि।

विनीत

डॉ० श्री पङ्कज झा



महाकवि पं० श्री बबुआजी झा 'अज्ञात'
क
धर्मपत्नी स्व० गोदावरी देवी



महाकवि पं० श्री बबुआजी झा 'अज्ञात'

श्री

'प्रतिज्ञा-पाण्डव' महाकाव्यक

आधार-भूमि।

भरतवंशमे शान्तनु नामक राजा छलाह, हुनक राजधानी हस्तिनापुर छलनि। हुनका गङ्गाक गर्भसँ देवव्रत नामक पुत्र छलथिन। ओ पिताक प्रसन्नार्थ "मल्लाहक कन्या सत्यवती हमरा बापसँ विवाह करथु" अतएव आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण आ राजा नहिँ बनवाक प्रतिज्ञा कयलनि। भीषण प्रतिज्ञाक कारणे भीष्म नाम सँ प्रसिद्ध भेलाह।

सत्यवतीक गर्भसँ शान्तनुकेँ दू गोट पुत्र प्राप्त भेलनि, चित्राङ्गद आ विचित्रवीर्य। चित्राङ्गद वनमे चित्राङ्गद नामक गन्धर्वक हाथेँ मारल गेल। शान्तनु दिवंगत भय गेलाह। एक मात्र सन्तान बाँचल विचित्रवीर्य। जकर विवाह भीष्म अम्बिका अम्बालिका सँ करौलनि। ओ दूनू काशीराजक कन्या छलि। विचित्रवीर्य अत्यन्त कामी तेँ अकाल काल कवलित भय गेल। ओकरा सन्तान नहिँ भेल छलैक, अतएव भरतवंशक अवसान भय गेल छल।

सत्यवती कुमारिये अवस्थामे पराशर मुनिक वीर्य सँ प्रसिद्ध व्यास मुनिक जन्म देने छली। हुनका सत्यवती बजाओल आ कहल जे हस्तिनापुरक राज वंश उच्छिन्न भय गेलैक तेँ अहाँ नियोग विधिसँ विचित्रवीर्यक पत्नी सँ सन्तान उत्पन्न करू। व्यास युगधर्मानुकूल ब्रह्मा आ सत्यवतीक आदेश पर प्रवृत भेलाह। फलतः अम्बिकाक गर्भ सँ धृतराष्ट्र आ अम्बालिकाक गर्भसँ पाण्डु जन्म लेलनि। दासीक गर्भसँ विदुरक जन्म भेल।

धृतराष्ट्रक विवाह गान्धारी सँ भेलनि, जे गन्धारक राजा शकुनिक बहिन छलीह। पाण्डुक पत्नी भेलीह बसुदेवक बहिन आ कुन्तिभोजक पालित पुत्री कुन्ती आ मद्रदेशाधिप शल्यक बहिन माद्री। धृतराष्ट्र जन्मान्ध रहथि तेँ पाण्डु सिंहासनासीन भेलाह। पाण्डु एक दिन आखेटक लेल जंगल गेलाह। जंगलमे किंदम मुनि अपना पत्नीक संग मैथुनरत रहथि, मृगक भ्रमसँ पाण्डु वाण मारि देलथिन। मरैत किंदम शाप देलथिन, अहाँ हमरहि जकाँ मैथुन करैत प्राण-त्याग करब। पाण्डु बड़ दुःखी भेला आ राजगद्दी धृतराष्ट्रकेँ

दय दूनू पत्नीक संग तपस्या लेल वन गमन कयलनि। वनमे पतिक आदेश सँ कुन्ती दुर्वासा सं प्रदत्त मन्त्र सँ क्रमशः तीन देवताक आवाहन कय तीन पुत्रक जन्म देलनि, धर्म सँ युधिष्ठिर, वायुदेव सँ भीम, एवं इन्द्र सँ अर्जुन जन्म ग्रहण कयलनि। माद्री सेहो अश्वनी कुमार सँ नकुल आ सहदेवक जन्म देलथन। हस्तिनापुर मे धृतराष्ट्रकेँ गान्धारीक गर्भ सँ एक सय पुत्र भेलनि। ताहिमे सभसँ जेठ दुर्योधन तकर छोट दुःशासन। दूनू महान् दुष्ट छल।

पाण्डु एक दिन कामार्त भय माद्री सँ सम्पर्क करितहिँ प्राण त्याग कय देलनि। माद्री हुनकहि संग चितारोहण कयलनि। बनस्थ ऋषि मुनि लोकनि पाँचो पाण्डव आ कुन्ती केँ संग कय हस्तिनापुर अयलाह आ वनक सभ वृत्तान्त भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर प्रभृतिकेँ कहि घुरि गेलाह। कुन्ती पुत्र सभक संग धृतराष्ट्रक संरक्षणमे रहय लगलीह। पाण्डवक बल बुद्धि सँ दुर्योधन जरैत रहैत छल। हिनका लोकनिक विनाशार्थ किछु ने किछु उकठ करितहिँ हैत छल। एक बेर तँ भीम केँ विषपान करा गंगामे भसा देलक, परञ्च भीम बाँचि गेलाह। लाहक घरमे सभकेँ जरयबाक योजना बनौलक, तखनहु विदुरक सहायता सँ बाँचि गेलाह आ अज्ञात रूपेँ घुरय लगलाह।

किछु दिनक बाद पञ्चाल राज द्रुपदक ओतय द्रौपदीक स्वयंवर सभामे ब्राह्मणक वेषमे पाण्डव लोकनि उपस्थित होइत गेलाह। अर्जुन प्रतिज्ञात लक्ष्य वेध कय द्रौपदी केँ प्राप्त कयलनि, संगहिँ विद्रोही राजा सभकेँ युद्धमे पराजित कयलनि। व्यासक आज्ञा सँ द्रौपदीक संग पाँचो भाइक विवाह भेलनि। आब देखार भय गेल छलाह। भीष्म, द्रोण, बिदुर आदि मनीषीक आग्रह सँ धृतराष्ट्र हिनका लोकनिकेँ आधा राज्य बाँटि देलथिन। ई सभ इन्द्रप्रस्थ मे अपन राजधानी बनौलनि आ अपन राज काज कृष्णक विचारानुकूल चलवय लगलाह।

कालक्रमे हिनका लोकनि कृष्णक सहायतासँ राजसूय यज्ञक ओरियान करय लगलाह। यज्ञक सम्पादनमे जरासंध वाधक छल। कृष्णक मन्त्रणा सँ भीम मल्ल युद्धमे जरासंधकेँ पछाड़ि मारलनि। तकर वाद यज्ञ निर्वाध आरंभ भेल। देश भरिक राजा सभ अबैत गेला। दुर्योधनो निमन्त्रित भय आयल।

ओ पाण्डवक प्रतिष्ठा योग्यता आ सम्पत्ति देखि जरय लागल। यज्ञ समाप्त भेला पर दुर्योधन हस्तिनापुर लौटि आयल आ कर्ण, दुश्शासन, एवं शकुनिक संग मन्त्रणा कय पाण्डवके बजौलक। जुआमे छल प्रपञ्च सँ युधिष्ठिर सँ राज पाट धन वीत जीति लेलक।

द्रौपदीक अपमान कयलक। जूआक प्रतिज्ञाक अनुसार पाण्डव लोकनि द्रौपदीक संग बारह वर्ष वनमे आ एक वर्ष विराट नगरमे अज्ञात रूपे निवास कय प्रतिज्ञापूर्ण कयलनि। आब आधा राज्यक माङ कयलनि, दूत बनि स्वयं कृष्ण हस्तिनापुर गेलाह। दुर्योधन आधा राज्यक कोन कथा पाँचो टा ग्राम देवाक लेल प्रस्तुत नहिँ भेल। प्रत्युत सूईक नोक भरि भूमिओ नहिँ देव, से कहलक। अतएव कुरुक्षेत्रक मैदानमे कौरव ११ अक्षौहिणी सेनाक संग आ पाण्डव ७ अक्षौहिणी सेनाक संग १८ दिन युद्ध करैत रहला। सर्वनाश भय गेल। कौरवक पक्षमे कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा आ संजय जीवित रहलाह। पाण्डव पक्षमे पाँचो भाइ पाण्डव, सात्यकि, कृष्ण आ युयुत्सु बँचलाह, युयुत्सु धृतराष्टक पुत्र छल जे पाण्डवक पक्ष सँ युद्ध करैत रहल। ओ बैश्य जातिक स्त्रीसँ उत्पन्न भेल छल। एक अरब छेयासठि करोड़ बीस हजार योद्धा मारल गेल।

अर्जुनक पुत्रवधू उत्तरा गर्भवती रहथि। हुनक गर्भ सँ अश्वत्थामाक अस्त्र सँ मृत शिशु जन्म लेलक, जकरा कृष्ण अपन प्रभाव सँ जीवित कयलनि। कृष्णे ओकर नाम परीक्षित रखलनि। परीक्षित् ६० वर्ष राज्य कयलनि। एक दिन तक्षक नागक दंशसँ प्राण-त्याग कयलनि। हुनक पुत्र जनमेजय राजा भेलाह। जनमेजय उत्तङ्क मुनिक सनकौने पितृहंता तक्षक सँ बदला लेवा लेल नागान्तक यज्ञ आरम्भ कयलनि, बहुत किछु नाग सभ मरबो कयल। अन्तमे आस्तीक मुनिक आग्रह पर यज्ञ रोकि देमे पड़लनि। दोसर दिन सभा लागल। कथा वाचक वैशम्पायन सँ जनमेजय कुरुक्षेत्रक युद्धक सम्बन्धमे प्रश्न उठौलनि। 'प्रतिज्ञा-पाण्डव, महाकाव्य एही पृष्ठभूमि पर आरम्भ भेल अछि।

प्रतिज्ञा पाण्डव महाकाव्य मे प्रयुक्त किछु पात्र क प्रसिद्ध नाम आ नामान्तर।

व्यासः—प्रसिद्धि व्यास नाम सँ। यमुना क द्वीप मे जन्म तेँ द्वैपायन। वर्ण सँ णिपड श्याम छलाह तेँ कृष्ण। सत्यवती जन्म देल तेँ सत्यवतीनन्दन।

भीष्मः—प्रथम नाम देवव्रत। भीषण प्रतिज्ञा कयलनि तेँ प्रसिद्ध नाम भीष्म। कौरव आ पाण्डव क सम्बन्ध सँ पितामह। गंगा जन्म देने छलथिन तेँ गाङ्गेय, गङ्गानन्दन।

धृतराष्ट्रः—प्रसिद्ध नाम धृतराष्ट्र आ धृत। अम्बिका क पुत्र तेँ आम्बिकेय अम्बिका नन्दन। कुरु क राजा तेँ कुरुराज।

युधिष्ठिरः—युधिष्ठिर प्रसिद्ध नाम। पाण्डुक पुत्र छलाह तेँ पाण्डव पाण्डुपुत्र आदि। माइक नाम कुन्ती आ पृथा तेँ कौन्तेय आ पार्थ। धर्म क पुत्र तेँ धर्मतनय। धर्मक यथार्थ पालक तेँ धर्मराज।

भीमः—पाण्डुक पुत्र तेँ पाण्डव। माइक नाम कुन्ती आ पृथा तेँ कौन्तेय आ पार्थ। वायु पिता तेँ पवन पुत्र, पवन कुमार आदि। बड़का खाधुर तेँ वृकोदर प्रसिद्ध नाम भीम।

अर्जुनः—प्रसिद्ध नाम अर्जुन। पाण्डुक पुत्र तेँ पाण्डव। माइक नामपर पार्थ, कौन्तेय। इन्द्रक पुत्र-इन्द्रकुमार आदि। वामा हाथहुँ सँ वाण चलबैत छलाह तेँ सव्यसाची। सर्वत्र विजयी तेँ विजय। कुवेर केँ जीति धन अनलनि तेँ धनञ्जय।

द्रौपदीः—द्रुपदराज क कन्या तेँ प्रसिद्ध नाम द्रौपदी, द्रुपद कुमारी आदि। पञ्चाल देशक कन्या तेँ पाञ्चाली। पिण्ड-श्याम रहथि तेँ कृष्णा।

कर्ण :—प्रसिद्ध नाम कर्ण प्रथम बापक राखल वसुषेण। अधिरथ क पालित पुत्र तेँ आधिरथि अधिरथनन्दन आदि। पालिका राधा तेँ राधेय राधानन्दन आदि। अंग देशक राजा तेँ अङ्गराज अङ्गेश आदि।

द्यूतः—जूआ प्रसिद्ध नाम। संस्कृत मे द्यूत अक्ष आ दुरोदर।

पुनश्चः—कुरुक सन्तान होयबाक कारणेँ युधिष्ठिर आदि आ दुर्योधन आदि दुनू कौरवभेलाह। पृथक्ताक कारणेँ दुर्योधन सभ भाइ कौरव कहबैत अछि। युधिष्ठिर पाँचो भाइ पाण्डव नामे ख्यात छथि।

—०—

श्री :

पहिल सर्ग

जनिक उदय आशा-आस्य-हासावतारी
जनिक किरण-धारा अन्धकारापहारी।
दुरित तम-तमी सँ त्रस्त संसार भारी,
दिनकर द्युतिधारी होथु कल्याणकारी !

जनमेजय नृप मानलनि आस्तीक क अनुरोध;
अहि[1]कुल-दाहक देल तजि यज्ञक संग विरोध !
मण्डपमे लागल सभा अछि सभ लोक अबैत;
वैशम्पायन सँ प्रणत नृप छथि प्रश्न करैत ।

कौरव-पाण्डव मध्य किये रण विकट भेल छल ?
कोन ककर अपराध तकर बनि हेतु गेल छल ?
भेल भारतक लेल समर सभ विधि संहारी,
रत्नराशि चल गेल, रहल किछु कोइला कारी।

अछि करैत विद्वेष किये मानव सँ मानव ?
किये उकाठक ठाठ रचय बनि दुर्दम दानव ?
युद्ध विनाशक हेतु सनातन विश्व जनै अछि'
होइतहुँ बुद्धि-प्रधान मनुज पुनि युद्ध ठनै अछि।

व्यस्त क की उन्माद समस्तक प्राण लैत छै ?
की प्रकृतिक संहार-क्रिया अनिवार्य ह्वैत छै ?

१—अहि-सर्प

पहिल सर्ग

भीष्म द्रोण कृप विज्ञ विदुर सन लोक विचारी,
रोकि न सकला युद्ध लगै अछि अचरज भारी ।

वैशम्पायन :—

सत्यक द्वेष असत्य सनातन करितहिँ आयल,
दुर्जन सज्जन संग शत्रुता रखितहिँ आयल ।
सरल लोक कें कुटिल-हृदय खल ठकितहिँ आयल,
तें भूतल मे युद्ध सनातन होइतहिँ आयल ।

अनकर लोभी लोक धरा-धन हरितहिँ रहलै,
सृजन संग जन दुष्ट वञ्चना करितहिँ रहलै ।
युग-युग अनकर स्वत्व अन्यजन जोहितहिँ रहलै,
तें भूतल मे युद्ध सनातन होइतहिँ रहलै ।

एक जनक उद्दाम-हृदय संग्राम ठनैये,
एक जनक उन्माद क्षितिक संहार बनैये ।
झगड़ा झंझट एक जनक अभिमान तकैये,
मानवता उद्विग्न आइयो त्राण तकैये ।

उच्च विचार क लोक कते उपदेश दैत छथि,
शान्तिक लेल प्रयास कते ज्ञानी करैत छथि ।
तखनहु तकर विरुद्ध जगत मे युद्ध ह्वैत अछि,
शान्ति-यत्न कय व्यर्थ दानवी वृत्ति दैत अछि ।

सत्त्वगुणक सन्देश रजस्तम नहिँ सुनैत छै,
उज्ज्वल रविक प्रकाश गहन घन अन्हरबैत छै ।
शान्ति-विमुख जनकेर कुमति अनिवार्य ह्वैत छै,
चुट्टीकें उगि पाँखि विनाशक क्षण अबैत छै ।

पहिल सर्ग

छला पाण्डुनृप—पुत्र युधिष्ठिर शान्ति-सुधाकर,
सत्य जेना साकार रहथि सभ सद्‌गुण आकर।
अनुग[1] अनुज छथि भीम नकुल सहदेव धनंजय,
ज्ञानक अनुगत होथि जेना पुरुषार्थ-चतुष्टय[2]।

दुर्योधन सयभाइ छलनि पितिऔत पाण्डवक,
कुटिल क्रूर अवतार जेना छल पाप-प्रपञ्च क।
दुःशासन वसुषेण[3] शकुनि सन जन सहचारी,
अग्निक संग बसात यथा जनपद-संहारी।
अपने सन सभ लोक विश्वमे संग तकैये,
निज प्रकृतिक अनुरूप सहायक अंग तकैये।
सुजनक किन्तु समाज सभक कल्याण तकैये,
दुष्ट जनक दल शान्ति-सुखक अवसान तकैये।
राज्य आध लय लेत युधिष्ठिर, तें दुर्योधन,
प्राण लैक कय बेरि कुटिल कयलक आयोजन।
सतबनि कौरव यदपि अनेको छलक विधासँ,
रहथि बिदुर बचबैत सदा सस्नेह दया सँ।
रहथि कण्टकाकीर्ण गुलाब क विकच कुसुम सन,
आन्हर बनल छलाह जेना घी खाइत ब्राह्मण[4]।
आयु छलनि बलवान, छला भगवान सहायक,
भेल खलक सभ खेल विफल अवसान विधायक।

१—अनुग=अनुगामी। २—पुरुषार्थ=धर्म, अर्थ, काम आ मोक्ष।
३—वसुषेण=कर्ण। ४—कथा छैक, एक ब्राह्मण रहथि, हुनक पत्नी व्यभिचारिणी छलि। ओ हुनका खाय पिबयमे अवहेला करनि, ब्राह्मण लटि गेलाह। एक दिन कतहु निमन्त्रणमे घी देलकनि, ओ रातिमे वाजय लगलाह, घी देलक तें हमरा सुझितहुँ नहि अछि। ताहि दिन सँ व्यभिचारिणी घी देबऽ लगलनि। किछु दिन मे ब्राह्मण बलवान भऽ गेलाह, तखन ओ जार आ पत्नी, दुनूकें मारि भगौलनि।

पहिल सर्ग

जकरा शिर अज्ञात नियति कर-छाह दैत छै,
तकर अमंगल शत्रु कोनो की कय सकैत छै ?
अन्तिम आधा राज्य जरठ पित्ती सँ पौलनि,
इन्द्र प्रस्थ मे आबि युधिष्ठिर वास बनौलनि।

मिलि जुलि पाँचो भाइ अपन पुरुषार्थ जगौलनि,
जन-अनुरञ्जन कर्म अपन प्रिय धर्म बनौलनि।
गण शासन जन-मनोनीत नव नीति चलौलनि,
अपनहुँ सँ बढ़ि प्रजा जनक सुख-शान्ति बढ़ौलनि।

अशन-वसन-दुख दूर सभक, नित नव उत्पादन,
दुर्गुण-दोष-विमुक्त सजग सभतरि अनुशासन।
शान्त अनैतिक कर्म, समुद्यत-दण्ड प्रशासन,
जन जीवन निष्पाप, अनघ[1] अपनहुँ सिंहासन।

शिखर क उच्च विचार, आचरण त्याग-तपस्या,
समता-मूलक नीति, पड़ायल सकल समस्या।
प्रेम परस्पर पूर्ण, समृद्धिक स्रोत बहै छल,
विश्रुत राम क राज्य तुलायल, लोक कहै छल।
राज धर्म-प्रिय भूप नीति कृत सतयुग आनथि,
दशमुख कंस समान नृपति कलिकाल बनाबथि।
सत्य युगहु मे वेणु[2] सदृश छल नरपति पापी,
आनथि भूपर साम्य अचिर पृथुराज[3] प्रतापी।

१—अनघ=निष्पाप। २.३=सत्ययुगमे बेणु नामक राजा छल। ओकरा अन्याय सँ प्रजा 'त्राहि गोविन्द' करै छल। ऋषि-मुनि पहिने ओकरा बुझौलथिन, पश्चात् अपन ओजस्वी हुंकार सँ निष्प्राण कय देलथिन। ओकरहि देह सँ पृथु क जन्म भेलनि, जे राजा बनि पृथ्वी पर समता आनल आ प्रजाकेँ सुखी-समृद्ध बनाओल।

रहनि हरिक सहयोग गेला बनि पाण्डव नामी,
छलनि प्रशंसा नीति-विहित बढ़ि दिग्दल-गामी।
उच्च सतह पर राजनयक अवधारण-कामी,
राजसूय करताह यजन अतिशय आयामी ।

गणतन्त्रक नवनीति छलै सभतरि सुखकारी,
जरासन्ध मगधेश तकर छल बाधक भारी ।
कृष्ण क अनुमत राज्य अवनि जे नृप चलबै छल,
चुनि चुनि तकरा जरासन्ध वन्दी बनबै छल ।

जन-कल्याण क शत्रु रहय ओ बड़ धुरफंदी,
बीस सहस नृप रहथि ओकर कारा मे बंदी ।
विश्व-जनीन न भय सकैछ नैतिक निर्धारण
तेँ छल पाण्डव आगु प्रश्न मगधेश क मारण ।

अर्जुन भीम समेत मगध मागध पहुँचै छथि,
जरासन्धकेर प्राण वृकोदर रण मे लै छथि ।
पथ निष्कंटक कृष्ण बनौलनि कूट नीति सँ,
ससरल यज्ञ क काज तखन बड़ सरल रीति सँ ।

राजसूय' मख भेल प्रपञ्चित पाण्डु कुमार क,
शक्ति-प्रतापक संग विपुल महिमाक प्रसारक ।
दुर्योधन ईर्ष्यालु ततय आमन्त्रित आयल,
देखि अमित ऐश्वर्य देयादक मुह पनिछायल ।

मनमे लागल आगि, हृदय नहिँ चैन पड़ैये,
विविध विचारक चक्र वात मे उड़ल फिरैये ।
माछक कुटिया देखि बिलाड़िक कोंढ़ कटैये,
कोन युक्ति सँ लेब हड़पि शठ मोन बँटैये ।

ककरो यदि उत्थान उदय श्रम जन्य देखै अछि,
बहुतो जन सामान्य हृदय सँ हर्षित ह्वै अछि ।
मुदा तकर प्रतिकूल प्रायशः देखि पड़ै अछि,
निकट क अपन देयाद द्वेष सँ कुहरि मरै अछि ।

आबि नगर खटवारि पड़ल तन पहिरन कारी,
अन्न पानि तजि गेल मुरझि जनु बन महकारी ।
माय-बहिन हितबन्धु कते जन आबि पुछैये,
'छी सहैत की हेतु' कोनो नहिँ उत्तर दैये ।

बौक बहिर अनुरूप रहै अछि मुनि सम मौनी,
ओढ़ि सुतै अछि मूनि नयन साँसे तन तौनी ।
हृदय क दानवतत्त्व परिस्थिति अछि भरिऔने,
करत मञ्च-निर्माण प्रपञ्च क अवसर पौने ।

"दुर्योधन तजि अन्नजल छथि करैत प्राणान्त,"
नगरी मे सभ ठाम से पसरि गेल वृन्तान्त ।

पहिल सर्ग समाप्त

—o—

दोसर सर्ग

कर्ण शकुनि दुश्शासन अनुज-समेत,
आयल जुटि युवराजक[1] शयन निकेत।
मुह चमकैत जकर छल चान-समान,
अछि होइत से सम्प्रति हिम-हत भान।
कर्ण पुछै अछि, आकुल स्वर-संघात,
गेल ठमकि युगनयनक निमिष-निपात।

किये मित्रवर, कयल अहाँ अनशनव्रत-धारण,
की अछि दुःखक हेतु ? कहू, कुरुवंश प्रकाशन।
कोन एहन उर चोट ? जकर उपचार हैत नहिँ,
कोन भयंकर आधि ? जकर प्रतिकार हैत नहिँ।

बूझि पड़ल अभि[2]सन्धिक क्षण अनुकूल,
अछि कहैत दुर्योधन भय चट तूल।
विकट कष्ट अछि मित्रप्रवर, नहिँ कहल जाइ अछि,
समाधान नहिँ एक एकर समुचित बुझाइ अछि।
सन्तापक अवसान जखन नहिँ मन सुझाइ अछि,
जीवन सँ अभिलषित हमर तँ मरण आइ अछि।

नयनहिँ सँ नहिँ अन्ध हमर छथि वाप मनहुँ सँ,
रिपुक तुल्य व्यवहार करथि ओ पुत्र जनहुँ सँ।
राजपाट दय आध युधिष्ठिर केँ चमकौलनि,
केचुआ केँ जनु फूकि भुजग विष-दन्त बनौलनि।
दुष्ट विदुरबा चालि हमर नित निष्फल कयलक,
भीष्म द्रोण कृप वृद्धजनो रिपुहिक पछ धयलक।
हमर बाप निर्बुद्धि बाँटि धन-धरती देलनि,
हमरा लोकनिक भाग्य-भोग सभ चौपट कयलनि।

१—युवराज=दुर्योधन। २—अभिसन्धि=कपट रचना।

दोसर सर्ग

प्रश्न कोनो यदि औत, विदुर कें बजा लैत छथि,
ओकर विचारें समाधान किछु पिता लैत छथि।
नीति-निपुण उचितज्ञ कणिक[3]सम पण्डित भारी,
तकर विचार न लेथि, विदुर छनि असल विचारी।

जन्महिं सँ ओ रहल नराधम हमर विघाती,
गहुमक अंकुर लेल जेना कौआ उत्पाती।
कौरव-हित-घन लेल रहल ओ नित्य प्रकम्पन[4],
रिपुक हाथ चल गेल हमर उड़ि हाय! धरा-धन।

पाण्डु छला रति-विमुख[1], छलनि मुनि शाप भयंकर,
पाण्डव पाँचो भाइ तनय थिक ककरो अनकर।
बापक औरस पुत्र जखन नहिं हयत ज्ञात अछि,
अंशक भागी हैत कियै ई साफ बात अछि।

सुनलक नहिं क्यो बात हमर, हम बुड़िबक भेलहुँ,
चलल जूति ने एक, करब की चुप भय गेलहुँ।
कचकि रहल ओ बात जेना उर गड़ल वाण अछि,
यज्ञक छवि तें देखि हमर जरि गेल प्राण अछि।

दिस-दिस सँ नरपाल-निकर दल बान्हि अबै छल,
उपहारक नहिं अन्त असंख्यक रत्न लबै छल।
लिपिक कक्ष मे पहुँचि अपन सभ नाम लिखौतें,
रहय ठाढ़ बनि भीड़ प्रतीक्षित अवसर पौतें।

३—कणिक=चार्वाकक अनुयायी एक नास्तिक विद्वान्।

४—प्रकम्पन=बिहाड़ि।

१—रति विमुख=अपन पत्नी सँ रति-रत किंदम मुनि कें मृगक भ्रम सँ पाण्डु वाण मारि देने छलथिन, तें मरैत काल किंदम मुनियो पाण्डु कें शाप देलथिन, अहूँ स्त्री सहवास करितहिं मरब।

दोसर सर्ग

सभा मध्य दुर्नीति नरेशक कृष्ण देखौलनि,
कष्ट कथा जनताक कतय की व्यक्त बुझौलनि।
उत्पीड़न जनकेर उचित नहिँ आब, सुझौलनि,
जन-क्रान्तिक उद्दाम तरंगक ध्यान देऔलनि।

सुरसा सन नृप लोकनि क्षुधा नमरौने गेला
भोगवाद दिस पैर अबाध बढ़ौने गेला।
निर्दयता अतएव नृपक कुहराम मचौलक,
तेँ नवनीतिक माङ एखन जन-कण्ठ उठौलक।

नृपतन्त्रक जँ धर्म नृपति अपनौने रहितथि,
अपन प्रजा केँ पूर्ण प्रसन्न बनौने रहितथि।
दया धर्म सन्तोष हृदय उपजौने रहितथि,
दोसर तन्त्रक बात किये क्यो कोविद कहितथि ?

जनता केँ सुखशान्ति क्षितीशक त्याग दैत छै,
सर्व - समञ्जस तन्त्र नृपक अनुराग दैत छै।
जनमन केँ तँ जीति लेथि नृप सदय त्याग सँ,
तुष्ट रहथु लहि अपन उचित उपलब्ध भाग सँ।

जन सुखदायक नव्य नीति नृपजन स्वीकारथु,
कोन अनर्गल प्रश्न हृदय दय हाथ विचारथु।
देशभक्तिक जँ भूप करथि स्वीकृत गणशासन,
कय सकैत छथि तखन कोनो केन्द्रक निर्धारण।

गणतन्त्र क नहिँ नीति सकल नृप जन क इष्ट छल,
नव्यनयिक हरि केर अर्चना बड़ अशिष्ट छल।
किन्तु तकर प्रतिकूल कहाँ क्यो डर सँ बजला,
शिशुपालक अतिरिक्त सभहु भय गुपचुप रहला।

दोसर सर्ग

कयलनि कमलाकान्त जखन शिशुपालक हत्या,
रहला तखनहुँ मौन जेना नहिँ ककरहु सत्या ।
भय सँ चकरी गुम्म, मुहक छल साँस-वाक बन,
गरम दूध जल सिक्त जेना सभ संयत सन्मन ।

थल क भ्रान्ति जल माझ कतहु थल जल भ्रम कारी,
सभा-भवन निर्माण विधा छल भ्रामक भारी ।
छलहुँ संग मामाक थल क भ्रम जल मे खसलहुँ,
भेल अपरतिभमोन हँसिक हम भाजन बनलहुँ ।

निरखि अतुल ऐश्वर्य अरिक मन हमर खिन्न अछि,
बीति जाइ अछि राति क्षणो नहिँ होइत निन्न अछि ।
हैत कोना मन शान्त कोनो नहिँ संगत रस्ता,
तेँ जीवन सँ बूझि पड़ै अछि मरणे सस्ता ।

छोट-छीन छल गाछ एखन शत-शाख भेल छै,
मोह-मोह बढ़ि सीर पहुँचि पाताल गेल छै ।
पक्ष-समर्थक लोकँ एखन बनि बहुल गेल छै,
करब आब उच्छेद रिपुक बड़ कठिन भेल छै ।

सूर्य-किरण सँ सूर्यकान्त बरि तुरत उठै अछि'
घन-गर्जन सुनि सिंह गरजि ऊपर उछिलै अछि ।
शत्रु क विपुल प्रताप कोना हम सहि सकैत छी ?
जीवि अरिक सुनि कीर्त्ति कोना हम रहि सकैत छी ?

अपियारि क निर्माण कय अछि मछवार तकैत,
कोन प्रकार क माछ अछि देखी छरपि खसैत ।
मित्रवरक व्याख्यान सुनि कर्ण ठहाका दैत,
मुख-छवि लाल गुलाब सन कय अछि आब कहैत ।

दोसर सर्ग

हँसी लगै अछि मित्र, एही लय प्राण तजै छी,
बिसरि अपन पुरुषार्थ किये बनि भ्रान्त बजै छी।
किये शशक[1] शार्दूल[2] हरिण हरि[3] तुल्य बुझै छी ?
छीनि पाण्डव क राज्य कहू हम लगले लै छी।

पाण्डु-सुतक संहार करब नहिँ कठिन बात अछि,
इन्द्रप्रस्थ पर करू आक्रमण, विजय हाथ अछि।
रिपु अहाँक की तिग्म तेज केँ सहि सकैत अछि ?
रविक आगु खद्योत-निकर की रहि सकैत अछि ?

अर्जुन केँ यदि गर्व कोनो छै कोन्हि-सानिमे,
समर-भूमि से बूझि पड़त छी कते पानिमे।
टलहा-सोनक जाँच ह्वैत छै रणक साणपर,
मित्र प्रवर, शिर जैत ओकर उड़ि एक वाणपर।

हाथी सन अछि मोट वृकोदर मात्र गात सँ,
रण-अल्हड़ ओ मरत अहीं केर गदाघात सँ।
गदा युद्ध मे अहँक योग्यता अनुपमान अछि,
ककर एहन अभ्यास विश्व मे विद्यमान अछि ?

द्रुपद राज पाञ्चाल केहन छथि, छी जनैत हम,
एहन लोककेँ अपन आगु छी नहिँ गनैत हम।
गुरुक दक्षिणा काल अपन नहिँ शक्ति जगौलहुँ,
गुरु-प्रिय अर्जुन करौ युद्ध, हम तेँ अनठौलहुँ।

मित्रक हेतु कदाच टपकि यदुनन्दन औता,
मान प्रतिष्ठा प्रेम सङहिँ निज प्राण गमौता।

१—शशक=खढ़िया। २—शार्दूल=बाघ। ३—हरि=सिंह।

काल पृष्ठ अछि हाथ हमर अरि-शिर-संहारण,
परशुराम केर शिष्य थिकहुँ हम नहिँ साधारण ।

आन एहन के वीर विपक्षिक सिद्ध-हस्त अछि,
जकर वीर्य-बल देखि अहाँ केर चित्त त्रस्त अछि ?
छागर-पाठिक मोल हुड़ारक आगु हैत की ?
कर्ण-सिन्धु मे कीट कोटि नहिँ बूड़ि जैत की ?

जरासन्ध नहिँ जेय रहथि ककरहु सँ रण मे,
हाक हुनक सुनि दुराधर्ष भट भागथि वन मे ।
स्वयं कृष्ण वलराम पड़ायल छला समर सँ,
खार समुद्र क बीच गेला चल हुनके डर सँ ।

हमरा सँ रण ठानि स्वयं से हारि मानलनि,
देखि हमर बल-वीर्य सुहृद सहकारि मानलनि ।
घटना अछि विख्यात, कहू की फूसि कहैछी ?
त्रास क सरिता मध्य तखन की हेतु बहै छी ?

छलहुँ तिरस्कृत मित्र प्रवर, हम क्षत्र जाति सँ,
दिवा तिरस्कृत रहथि जेना तम-बहुल रातिसँ ।
अहिँक अनुग्रह पाबि एखन हम भूप भेल छी,
से हम सभ विधि सज्ज समर्पित अहाँ लेल छी ।

कर्ण क अभिमत, झूठ कहि
छलै लगायब आगि,
देव दनुज दूनू क्रमिक
अछि लड़ैत उर जागि ।

मनक उपेक्षित देव कोना सुनि शान्त रहै छथि ?
ध्वंसक दिस ओरियान अनर्गल बूझि कहै छथि ।

'श्री अज्ञात'

दोसर सर्ग

रे अर्जुन सँ अपन पराजय[1] मोन पारि ले,
प्रलयक तों आह्वान तखन कय अहंकारि ले ।

द्रुपदराज[2] सँ युद्ध ठानि बड़ जोर लगौलें,
अपन शक्ति बुझि विफल समर तजि प्राण बचौलें ।
झूठ बाज़ि तों लुब्ध लोकके सनक दैत छें,
संहारक ओरियान अनेरे की करैत छें ?

सुनि चट हृदयक दनुज कहै अछि चुप रह पापी,
अरे ! ज्ञान-गुदड़ीक प्रकाशन छोड़ प्रलापी ।
कयलहुँ नहिँ हम तखन वस्तुतः शक्ति-प्रकाशन,
की सदिकाल करैत पयोधर अछि जल-वर्षण ?

कर्णक सुनि उत्कर्ष भरल भाषण दुश्शासन,
बाजि उठल तत्काल लगा लगले वीरासन ।
सत्य कहै छथि अंगराज कुरु कुलक हितैषी,
पाण्डुसुतक उच्छेद किये नहिँ कय चट बैसी ।
सर्वजयी गाङ्गेय भीष्म कृप द्रोण संग छथि,
समर भयंकर कर्ण हमर अनिवार्य अंग छथि ।
मित्र धराधिप अपन जतय जे बजा लैत छी,
पाण्डुसुतक अतित्व विश्वसँ मेटा लैत छी ।

भीष्म संग रण ठानि भार्गवो[1] हारि गेल छथि,
गुरु सँ सम्मुख लड़निहार यम अतिथि भेल छथि ।

१—पराजय=द्रौपदीक स्वयंवर मे कर्ण अर्जुन सँ परास्त भेल छल ।
२=द्रुपदाराज=गुरुदक्षिणाक पूर्त्ति लेल द्रुपदक सँग युद्ध मे कर्ण सर्व-प्रथम समर भूमि छोड़ि भागल छल, तकरा पाछु कौरवो ।

१—भार्गव=परशुराम

दोसर सर्ग

जरासंध मदमर्दि कर्ण सन हमर पधक्षर,
दुखसँ छथि आक्रान्त किये पुनि हमर सहोदर ?

रिपुक नीतिसँ खिन्न बहुत क्षितिपाल भेल अछि,
शिशुपालक वधजन्य बहुत बढ़ि द्वेष गेल अछि ।
संग हमर ओ देत स्वयं ई सिद्ध सूत्र अछि,
कालगालमे गेल बुझथु सभ पाण्डुपुत्र अछि ।

राजसूयमे बिपुल व्ययी रिपु रिक्त आइ अछि,
चिरसँ संचित अपन कोषमे विपुल पाइ अछि ।
कीनि सकैछी अरिक युक्ति युत शक्ति सहायक,
युद्ध जीति हम लेब, परिस्थिति मंगल-दायक ।

छल कपटक सभ खेल चलै अछि जखन पाइपर,
दै अछि धोखा एक अपरकें जखन पाइपर ।
एक दोसरक प्राण लैत अछि जखन पाइपर,
जीत किये नहिँ हैत हमर पितिऔत भाइपर ?

कर्णक पूर्ण समर्थन मुदित करैत,
मामक दिस दुश्शासन घुरल कहैत ।
मामा कहू अहूँ की नीक विचार ?
हैत कोन विधि पाण्डव-कुल-संहार ?
लोल अपन अलगौलक शकुनितुरन्त,
कूट-कपटमे क्षमता जकर दुरन्त !

अहाँ सभक हम युद्ध-विधायक भाषण सुनलहुँ,
हैत क्रिया उपयुक्त एखन की, से पुनि गुनलहुँ ।

दोसर सर्ग

विजय पराजय सदा रणक सन्दिग्ध रहैये,
अविचारित किछु करब नीक नहिँ मोन कहैये ।

सोचि-समुझि सभ भाँति विवुध किछु काज करै छथि,
तखन तकर परिणाम अपन अनुकूल पवै छथि ।
एखन अकारण पाण्डु पुत्रसँ युद्ध ठनै छी,
प्रकृति-प्रजाकेँ कहू, किये नहिँ क्रुद्ध करै छी ?

कलह अकारण बूझि विदुर की मौन रहै छथि ?
अभिजन अपन जतेक कोना क्यो नीक कहै छथि ?
बुद्धि जीवि जन नहिँ कियेक अन्याय बुझै छथि ?
स्वयं अहाँ केर बाप कोन विधि स्वीकृति दै छथि ?

सेठ-साहु अछि राज्य भरिक सत्ता हथिऔने,
अहाँ सभक अछि नाक नाथ पाइक पहिरौने ।
पदासीन जन जोंक जकाँ अछि दाँत गड़ौने,
अकछि गेल अछि लोक, अहाँ सभ छी अनठौने ।

सक्रिय डाकू चोर जते वंचक व्यभिचारी,
सभतरि घोर अशान्ति भयाकुल, मानवभारी
कनियों छिद्र पबैत कहू प्रतिकूल जैत नहिँ ?
द्वेष-पूर्ण संग्राम अनर्थक हेतु हैत नहिँ ?

ठीक एकर प्रतिकूल युधिष्ठिर नीति जनैये,
निज सन्तानक तुल्य प्रजहुकेँ सत्य मनैये ।
अनय युद्ध बुझि दुहू प्रजाजन जँ जुड़ैत अछि,
राज्यक पाया तखन हो न हो हिलि सकैत अछि ।

दोसर सर्ग

हरिक इंगितें लोकतन्त्र बड़ दिव्य चलौलक,
लोक-हितक अनुरूप शासनक सूत्र बनौलक।
करबै जँ आक्रमण अहाँ सब विना कारणें,
प्रजा दुहू उठि लड़त, रहत नहिँ बिनु खेहारने।

तें रणसँ हम विमुख दोसरे युक्ति दैत छी,
बिषधर सापो मरत लाठियो बचा लैत छी।
धर्मराजकें द्यूत-निमित्तक न्योति बजाबी,
राज पाट धनधाम जीति ली वन्य बनाबी।

द्यूत कर्ममे हमर चातुरी अतुलनीय अछि,
हमर पार के पौत, अवनिमे सभ कत्तीय अछि।
धूरा शत्रुक आँखि तेना हम छीटि दैत छी,
अनायास सब वित्त-विभव हम झीटि लैत छी।

क्षत्रत्वक अभिमान क्षात्रजन जे रखैत अछि,
युद्ध जकाँ नहिँ द्यूत कर्मसँ नठि सकैत अछि।
औत अवश्ये धर्मराज बड़ अहंमन्य अछि,
हारि अपन ऐश्वर्य, बुझू ओ बनल वन्य अछि।

महाराज जँ कहा पठौथिन संग सनेहक,
औत अवश्ये तखन कोनो नहिँ गप सन्देहक।
बापहु सँ बढ़ि हुनक करै छनि पाण्डव आदर,
हुनक निदेशक निश्चय अछि, नहिँ करत निरादर।

सभा भवन निर्माण अहाँ अविलम्ब कराबी,
अपन जते छथि मित्र महीपति जन बजवावी।
द्यूतक जे उपकरण अपेक्षित आनि जुटावी,
रक्तपात बिनु अरिक अहाँ सभ किछु हथिआबी।

'श्री अज्ञात'

दोसर सर्ग

शकुनि-वचन धृत सुत कें पड़ल पसिन्न,
भेल जेना सरसिज सन मन उद्भिन्न।
किछु क्षण पूर्व जतय छल तम-संघात,
अचिर बुझायल दिनकर-दीप्त प्रभात।

हे प्रिय मातुल, अहाँ युक्तिगर बात कहै छी,
करता की पुनि बाप हमर तें आहत ह्वै छी।
बूढ़ सभक ओ जेंर विचारक लेल बजौता,
करता विफल प्रयास हमर, हत भाग्य बनौता।

हुनका जाउ बुझाउ, पसारब भाभट भारी,
हैत बुझैबा लेल हमर अनशन उपकारी।
एखनहुँ द्यूतक लेल द्रवित जँ अनुमति दै छथि,
सगरो दिन भटकैत साँझ घर घूरि अबै छथि।

अंगराज निज वचन-चातुरी सफल बनाबथु,
महाराज कें हमर मृत्यु अनिवार्य जनाबथु।
युक्ति-युक्त कहि बात विविध रस्ता पर लाबथु,
तखनहिँ हमरा धरा धाम मे जीवित पाबथु।

कहै छियनि हम साफ-साफ सभ छोट भाइ सँ,
शोषण दोहन बन्न करथु जनताक आइ सँ।
आनथु ऊपर दीन-हीन कें खंध-खाइ सँ,
जे चालू वाचाल पक्ष मे करथु पाइसँ।

राखथु सुख-सम्पन्न अखिल गुरुजन अभिजनकें,
उद्धत-भाव बिसारि बनाबथु संयत मन कें।
अपन समाङक सदृश घरक अनुचर कें मानथु,
राज्यक वातावरण अपन अनुकूल बनाबथु।

दोसर सर्ग

वैदिक विधिसँ महादेव केर स्नपन कराबथु,
दुर्गा सप्तशतीक बरोबरि पाठ चलाबथु।
ग्राम देवता केर भवन मे दीप जराबथु,
भाग्यक छनि निर्माण करब, से सभजन जानथु।

"स्वार्थ-जन्य भय सँ मनुज
ह्वै अछि जखन विवर्ण,
छथि सुझैत ईश्वर तखन"
सोचथि वीर विकर्ण[1]।

एहने लोक नेहाइ चोरा-सुइ दान करैये,
आओत स्वर्ग-विमान कखन चढ़ि चोर तकैये।
स्वार्थ-सुरा-मद-मत्त गमा जे गति-मति लैये,
तथ्य-अतथ्यक भेद कोना से बूझि सकैये?

करत पाप भगवान केँ तेँ करैत अछि सोर,
हुनकहु अपने सन जेना अछि बुझैत घुसखोर।

दोसर सर्ग समाप्त

१. विकर्ण= दुर्योधवक भाइ सभ से एक छल जे विचारवान् लोक छल।

—०—

तेसर सर्ग

शोकाकुल कुरुराज छथि बैसल भवन अधीर,
छनि बहैत निर्झर जकाँ दुहू नयनसँ नीर।
आधिरथिक[1] नेतृत्व मे गेल खलक चल जेर,
गोड़ लागि बैसल सभहुँ, मचल काल किछु रेर।

मुह पर रेखा चिन्तनक अछि स्वर करुण कँपैत,
संबोधित कय कर्ण कें छथि क्षितिपाल कहैत।

की कारण औ कर्ण, सुयोधन, खाट निरन्तर छथि अपनौने ?
अन्नपानि तजि किये जानि ने घर भरि कें छथि खिन्न बनौने ?
उतरि किये छथि गेल मरै पर ? नहिँ किछु ककरहु हेतु जनौलनि,
चिन्तित चकित नयनसँ वञ्चित बापक मनमे दुख उपजौलनि।

राज पाट, धन धाम, सुशोभन राज्य सुलभ सुख-सुविधा पाबथि,
नौकर-चाकर, भाग्य भोग सभ तखन प्राण की हेतु गमाबथि ?
धरतिक अन्तस्तल मे संचित कोन भयंकर ताप भेल छै,
दैवक कुटिल कटाक्ष कोनो की कालरूप भूचाल लेल छै।

किये उदधि मे वड़वानल सँ आइ असंयत ज्वाल उठल छै ?
जल जन्तुक जीवन अपहारक लहरि सहस्र कराल उठल छै।
विकसित उपवन बीच कतय सँ अन्धर ई गति लैत ऐल अछि ?
फल-फूलक मृदु मसृण मंचपर ध्वंसक गीत गबैत ऐल अछि ?

मानस-सरक सलिल मे दारुण कोन एहन मिलि गरल गेल छै ?
नित्य प्रफुल्लित सुभग सरोरुह मुरछि गेल श्री-हीन भेल छै।

१—आधिरथि=अधिरथक पोष्य पुत्र कर्ण।

तेसर सर्ग

नहिँ अछि धाराधरक[२] गर्जना आतप-तप्त न धरा आइ छै,
शिशिरक जड़िमा दूर, अशान्तिक लेल किये दिन गढ़ल जाइ छै ?

अवनि दिशा आकाश विदिग्दल चकित काल दिक्पाल चकित छै,
चकित हस्तिनापुरक प्रजाजन आहत परिजन-जाल चकित छै।
कष्टक कोनो बात कहाँ छनि, नहिँ अपमानक बात बुझै छी,
सुभग वसन्तक रहितहुँ जेठक व्यर्थ बहैत बसात बुझै छी।

आन्हर बूढ़ जनक कर लाठी दूर पड़ायल किये जाइ छथि ?
पृथ्वीतलके तमसाकुल कय सूर[३] पड़ायल किये जाइ छथि ?
हिनके रुचि अनुकूल चलै छनि सहज नम्र संयत सभ भ्राता,
एखन सोच सँ गलल जाइ छनि, की अछि भावी हाय ! विधाता।

पतिक वियोग-व्यथासँ मरती पुत्रवधू मनुजेन्द्र कुमारी,
फड़ल फुलायल सभ विधि सुन्दर उजड़त हाय हमर फुलबाड़ी।
हमरो अन्तकाल अछि सन्निधि जरठ अन्धजन जीवि करत की ?
कुरुवंशक उच्छेद निकट छै, फाटल पट क्यो सीबि करत की ?

कोन एहन अछि प्रश्न ? जकर नहिँ संभव कोनो समाधान छै,
कोन एहन अछि रोग ? जकर नहि औषध कोनो विद्यमान छै।
पूछि पूछि सभ हारि गेल छनि, ककरहु सँ नहिँ बात करै छथि,
कहू अहूँ सभ की किछु कहलनि, कारण कोन विखिन्न मरै छथि ?

कर्णक संवृत ठोर पर विवृत दशन-छवि संग,
मायामय उक्तिक पसरि लगले गेल तरंग।

२—धाराधर=मेघ। ३—सूर=सूर्य

महाराज किछु कहब कठिन अछि विनु कहने नहिँ रहल जाइये,
विकल अहाँक निरन्तर दृग युग सँ जलधारा बहल जाइये।
युवराजो पुनि सहथि एक दिस, दोसर दिस अँह खिन्न कनै छी,
रहब कोना हम चूप, उपस्थित संकट भारी जखन जनै छी।

कहब कठिन एहि लेल धराधिप, असल बात बड़ अप्रिय ह्वै अछि,
किन्तु विपत्तकि काल कोना क्यो हित चिन्तक जन मौन रहै अछ ?
क्षमा करब सुनि हमर उक्ति तेँ छी अपनहिँ अनशन मे कारण;
अहिँक अधीन जनाधिप, एखनहुँ युवराजक अछि कष्ट निवारण।

निविड़ तिमिर मे अन्ध जगतकेँ ससरि दिवाकर बना दैत छथि,
चाहथि जखन गगनमे उपगत विश्व उजागर बना दैत छथि।
पाण्डुक औरस पुत्र न पाण्डव आधा राज्य किये दय देलहुँ, ?
अपना पुत्र सभक हित अनहित सोचि विचारि कहाँ किछु लेलहुँ ?
राजपाट लहि पाण्डु पुत्र सभ एखन बहुत वलवान भेल छै,
वासुदेव ब्रिदुरक इंगित पर लोभ अहूँकेर राज्य लेल छै।
जरासंध छल बाँहि अहाँ केर तकरहु दोसर लोक पठौलक,
मगधेशक वंदी नृप जे छल बन्ध - मुक्त कय मित्र बनौलक।
राजसूय मे के न जनैये स्वयं निमन्त्रण दय बजबौलक,
भरल सभा मे चेदिनरेशक[1] कृष्णक द्वारा कण्ठ कटौलक।
पहलमान छल साल्व[2], अहाँ केर बनितय बेर-कुबेर सहायक,
तकर सुनै छी अन्त करैपर उद्यत अछि यादव कुल-नायक।

१—चेदि नरेश=शिशुपाल। २—साल्व=साल्व देशक राजा। ओ शिशुपालक हत्यास क्रुद्ध भय स्वदेश जाकय द्वारका पर आक्रमण कयलक। कृष्ण जखन द्वारका गेलाह तखन साल्वकेँ मारवा लेल तैयारी करय लगलाह आ ओकर संहारो कयलनि।

तेसर सर्ग

पक्ष अहाँ केर हैत कोना वलहीन, तकर ओरियान करै अछि,
अवसर पबितहिँ करत आक्रमण, से बुझि पुत्र अहाँक मरै अछि।
असल बात हम बूझि कहैछी, पार्थ प्रपञ्चक तान तनै अछि,
भीतर सँ अछि स्याह, अहाँ लग आबि नराधम नम्र बनै अछि।

गणतन्त्रक सभ ठाम प्रसारण लेल कृष्ण रुचि बहुत लैत छथि,
नृपतान्त्रिक अछि राज्य अहाँ केर, तेँ पाण्डवकेँ सनक दैत छथि।
यदपि कहै छथि न्याय-पूर्ण जँ भूप लोकनि निज राज चलाबथि,
नवतन्त्रक पुनि कोन काज छै? ई कहि सभकेँ मूर्ख बनाबथि।

झोंझक गहुमन फेन उठौने दंशक अवसर ताकि रहल अछि,
आबहुँ चेत करू वसुधाधिप, महाशत्रु गर ताकि रहल अछि।
पिजड़ा मे अवरूद्ध बाघकेँ दयाद्रवित द्विज मुक्त बनौलनि।
उपकारक बदला मे हिँसक भोजन बनि निज प्राण गमौलनि।

धर्मराज अछि बनल युधिष्ठिर छाप तिलक कण्ठी गर धारी,
मुहमे रामक नाम निरन्तर, काँखक तर अछि कूट-कटारी।
सरल-हृदय छी अहाँ धराधिप, कहाँ प्रपञ्चक बात बुझैछी?
देखि चनेसर राति भ्रान्त मन अहाँ तुलायल प्रात बुझैछी।

धूर्त्त शिरोमणि बिदुर अहीं सँ वृत्ति पाबि उपभोग करैये,
अहिँक विनाशक लेल बिसरि से गुपचुप सभ उद्योग करैये।
अहाँ तपस्वी बनल बिलाड़िक नीति कथा सुनि नीक बुझैछी,
नीड़क शिशुकेँ लेत लोलपर, ताहि बात पर ध्यान न दैछी।

सत्य कहैछी, महाराज, ओ वासुदेव भगवान बनैछथि,
कुरुकुल कानन हेतु हुताशन बनता, से दिन काल गनै छथि।

तेसर सर्ग

अरिक चलै अछि जखन मन्त्रणा करबा लेल हमर अवहेला,
समुचित उत्तर दैक तकर नृप, अछि उपयुक्त एखन ई बेला ।

सम्मति अछि अपनेक अपेक्षित, एकर सुनिश्चित समाधान छै,
पानि बहा यदि देब खेत सँ छल-कपटक जरि गेल धान छै ।
जँ नहिँ अपने करब समर्थन मित्र न अनशन तोड़ि सकै छथि,
आनक कोन कथा, नहिँ हुनका प्रणसँ ब्रह्मो मोड़ि सकै छथि ।

द्यूतक खेला करक लेल यदि अनुमति अपने हित बुझि दै छी,
पाण्डव लोकनिक प्रबल हाथ सँ हारल दाव जीति पुनि लै छी ।
अक्ष-[1]कुशल शकुनिक कर निश्चित द्यूत कर्म मे अपन जीत अछि,
कपटक संग कपट आवश्यक राजनयिक जन मनोनीत अछि ।

हाथ जोड़ि हम भूप, कहै छी मित्रक अभिमत स्वीकृत करिअनु,
प्रेतपतिक पथ-पान्थ अन्यथा छाती अपन पिटैत बनबिअनु ।
युवराजक अछि प्राण अहीं केर हाथ एखन कहि साफ दैत छी,
देनहिँ अनुमति द्यूत-निमित्तक कुरु कुल अपने बचा लैत छी ।

अनशन-कारण कर्ण कहि पुनि कहि तकर उपाय,
अछि तकैत मुह, आब की छथि कहैत कुरुराय ।
कर्णक कथन अनर्थ कर सुनि नृप होथि सशंक,
गौर वर्ण मुख-ज्योतिपर पसरि गेल तम-पंक ।

अंगराज, वक्तृत्व अहाँ केर सुनितहिँ हम बनि गेल मूढ़ छी,
उड़ल जाइ ने जानि कतय हम झाँट-बिहाड़िक रथारूढ़ छी ।
धर्मराज षड्यन्त रचै छथि सुनि गप हमरा एहन बुझायल,
शून्य गगन मे कमलक कानन तुरत जेना भकड़ार फुलायल ।

१—अक्ष कुशल=जूआमे चतुर ।

तेसर सर्ग

पाथर जन्मलदूवि शशक-शिर सिंघ जेना उगि गेल आइ छै,
तूरक फाहा जकाँ हिमालय उखड़ि बसातें उड़ल जाइ छै।
द्यूतक बात सुनैत अनेरे महाराज नल मोन पड़ै छथि,
बन्धु विरोधक भान हृदय मे उद्भासित अविलम्ब करै छथि।

भाँज बुझैत छियनि हम शकुनिक छल छद्मक छथि पात्र सनातन,
रगड़ि काठ सँ काठ निरर्थक आगि लगौता कुरुकुल-कानन।
औरस पुत्रक प्रश्न अनर्गल अन्ध जकाँ क्यो जन उठबै छी,
अपन केहन इतिहास अतीतक देखि किये नहि तकरा लै छी।

सदा युद्ध-प्रिय क्षत्रिय रणमे जखन गमा निज प्राण लैत अछि,
क्षत्रिय-नारी तखन नयोचित द्विजसँ पुत्रक जन्म दैत अछि।
पितृ-घात सँ राम क्रुद्ध भय कयलनि क्षत्रिक वंश निकृन्तन,
सच्चरित्र ब्राह्मण सँ वनिता वंश बढ़ौलनि कथा चिरन्तन।

अपना कण्ठक घेघ ताकि नहिँ अनका माथक टेटर तकबै,
आत्म-विनाशन फूसिक बलपर कहू कहाँ धरि जगकेँ ठकबै।
शुद्ध सरल बिदुरक सन मानव छल कपटक पथ धय न सकैये,
राजहंस धोखहु सँ घोंघ ही अपन लोल पर लय न सकैये।
लम्पट चोर चुहार उलूकक लेल दिवा नहिँ नीक ह्वैत छै,
तेँ की जीवजन्तु जगती केर दिन केँ अधलाहे कहैत छै ?
लोकक हित संलग्न चतुर्भुज अपनो स्वार्थ बना लघु लेलनि;
द्वारवतीकेँ गणतन्त्रक नव शासन सूत्र विलक्षण देलनि।
केशवकेँ काकासन ज्ञानी परमेशक अवतार कहै छथि,
रहत कोना सुख-शान्ति लोकमे यत्नशील सदिकाल रहै छथि।
सयत शान्त अतुल वल बन्धुक द्वेष करब बड़ अशुभ बात थिक,
अर्जित वैभव देखि देयादक लोभ अनर्गल आत्म-घात थिक।

'श्री अज्ञात'

तेसर सर्ग

वीर पुरुष अपने बल - विक्रम सँ संचित सुख श्रेय करैये,
कायर क्रूर कुटिल-मति केवल अनुचित कर्मक बाट धरैये।
पाण्डव सभ नहिँ भ्रमहुँ अहाँ केर कटला खढ़ पर पैर दैत अछि,
तखनहुँ तकर विरुद्ध वञ्चना घोर अनीतिक रूप लैत अछि।

अन्यायक सृजनहिँ सँ सभ दिन पृथ्वी तल पर युद्ध ह्वैत छै,
इतिहासक पन्ना दिस कनियोँ झाँकि किये नहिँ लोक लैत छ ?
धन - जन-पूर्ण बलिष्ठ दशानन कार्त्तवीर्य अर्जुन अभिमानी,
न्यायक चलि प्रतिकूल गेल चल सकुल परेत पतिक रजधानी।

पुत्र थिका पुनि जेठ, मरथि सहि, नहिँ हठ हुनक कोना स्वीकारब?
अक्खज जीवन जिबतहिँ हुनका कहू उपेखि कोना हम मारब ?
हैत एकर परिणाम नीक की अधला तकरा की निरधारब ?
रानी सँ हम पूछि कहै छी एखनुक प्रश्न आगु दिस टारब।

कर्णक यदपि विचार, नृप अधलाह बुझैत छथि,
कयलनि पुनि स्वीकार, सोचथि विकल विकर्ण मन।
हाथ पैर बल बुद्धिक दय वरदान,
मानवकेँ जनु इंगित करथि प्रधान[1]।
कर्म समुझि बुझि कर सभ साधन छौक
तदनुकूल सुख दुःखक फल भेटतौक।

छथि बुझैत प्रस्तावक फल अधलाह
तखन किये पुनि तेम्हरहि नृप चललाह ?

१—प्रधान=प्रकृति ईश्वर।

तेसर सर्ग

एहन प्रवृत्ति मनुष्यक दृष्ट अनेक,
काज न दै अछि कोनो बुद्धि-विवेक।

कारण ताकि सुधी छथि जाइत हारि
नियतिवाद तें लै छथि उर अवधारि।
नियति दैत अछि भारसक मति गति मारि,
तें वसुधाधिप लेलनि हठ स्वीकारि।

यदि विरुद्ध किछु बाजब भय हम ठाढ़,
कपिक जेर जुटि टूटत बनब एकाढ़।
पुर-पयोधि मे पापक उठत बिहाड़ि,
डूबि जैत कुरुतरि, के सकत सम्हारि ?

तेसर सर्ग समाप्त।

बारिम सर्ग

कुरु पति पूर्ण निशीथ[1] मे छथि बैसल निज भौन,
सम्मुख बैसलि श्रीमती गान्धारी छथि मौन।
कणिकाचार्य समीप मे नास्ति-वाद-विद्वान,
छथि बैसल दुर्योधनक सभ विधि मित्र महान।
रानी सँ भय-भीत सन छथि कुरुराज कहैत,
स्वेद-सलिल सँ पूर्ण शिर-सिकुड़न छनि झलकैत।

अन्न-पानि तजि पुत्र मरै अछि ऐ गान्धार कुमारी,
कोन उपाय करब, नहिँ सूझय कष्ट भयंकर भारी।
पाण्डव लोकनिक संग दुरोदर[2] खेलक लेल सकार,
जँ नहिँ करब, मरत सहि, बाजू की अछि आब विचार ?

हमरा मुह सँ पाण्डुपुत्रकेँ दय आमन्त्रण अनतै,
एकरा सवहक द्यूत खेल मे प्रतिनिधि शकुनी बनतै।
धूर्त्त शिरोमणि जीति धराधन सरल लोक सँ लेत,
नहिँ हम बूझि रहल छी अन्तिम की अछि दुष्टक नेत ?

अनशन सँ पुनि पापक रस्ता दुर्योधन बनबै अछि,
है1 एकर परिणाम केहन, मन नहिँ अवधारि पबै अछि।
चिन्ता मे हम डूबि न देखी कोनो पार अवार
कहू, साचि किछु, करब उपस्थित दुःखक की प्रतिकार ?

विदुर कहैछथि, मरय दिऔ नृप, वज्र बनबिऔ छाती,
व्यक्तिक हेतु ममत्व समस्तक लेल परम संघाती।
दुष्टक मंत्री तीनू जनकेँ वंदी अचिर बनाउ,
देश - दिशाकेर संघ ध्वंस सँ अपनो वंश बचाउ।

१—निशीथ=दुपहर राति। २—दुरोदर=जूआ।

कृपाचार्य गाङ्गेय[3] द्रोण द्विज तकरे करथि समर्थन,
ममता किन्तु करैअछि हृदयक क्षणभरि मे परिवर्त्तन ।
नहिँ निश्चय पर पहुँचि रहल छी की सम्प्रति कर्त्तव्य,
कखनहुँ डोलि रहल अछि दक्षिण कखनहुँ मन पुनिसव्य[4] ।

परिचित पतिक स्वभाव सँ रानी पूर्ण छलीह,
खिन्न सुतक करतूतिसँ उत्तर मे बजलीह ।

आर्यपुत्र, अविराम अहाँकेर पुत्र-प्रेम अछि दोषी,
उचिते विपद तुलायल जखनहिँ शिथिल नीतिकेँ पोसी ।
पाण्डव लोकनिक उकठ लेल हठ सदा लैत छल ठानि,
बुझितहुँ मूल अनर्थक अन्तिम लैत छलहुँ अँह मानि ।

तकरे फल ओ फेर उकाठक छानि रहल अछि पेनी,
गीदड़-गीधक हैत पदाहत समर भूमि मे गेनी ?
एहन पुत्र सँ थीक भुवन मे बढ़ियाँ रहब निपूत,
कुल-परिवारक संग अर्वानि मे सभहक केतु कपूत ।

एकरा लीतहिँ अन्म अग्नि-गृह गीदर आबि तुलायल,
लागल भूकय जोर-जोर सँ सभहक मुह मुरझायल ।
लागल हेंकय स्वयं बाबि मुह अनुगुण ई गदहाक,
विस्मित लोक तकै छल टकटक, छल सभ लोक अवाक ।

बजला विदुर परम चिन्तातुर देखि भविष्यक आङन,
जँ ई रहत जिवैत जनाधिप कुरुवंशक कल्याण न,
एकरा फें कि दिऔ जंगल मे तखनहिँ सभहक नीक,
नहिँ तँ कानव अन्तकाल नृप ममता - मोह न ठीक ।

३—गांगेय=भीष्म । ४—सव्य=वाम ।

चारिम सर्ग

पुत्र-पेम सँ हुनक अहाँ कें कथा नीक नहिँ लागल,
धर्य विहीन हृदय मे हितकर बुद्धि-विवेक न जागल।
आइ विधाता केर प्रपञ्चित भेल विनाशक खेल,
लेनहिँ छोर-तोर कुरुवंशक महिंस मोनि मे गेल।

व्यस्तक लेल समस्तक कखनहुँ त्याग कहथि बुध नीक न,
ममता-ग्रस्त अहाँ नहिँ सुनलहुँ हमर कथा आज वन।
मातृ जनोचित ममता बापक मन मे लखि बिन्यस्त,
बूझि पड़ै अछि, कुरुवंशक रवि हैत सदा लय अस्त।

कोन अहाँ केर दोष, हाथधय होनी कर्म कराबय,
सुफल-कुफल-तरु अंकुर एहिना अकस्मात उगि आबय।
बुद्धि-प्रधान मनुष्यक यद्यपि दैवहुँ पर अधिकार,
किन्तु न सूझय दैछ पूर्व-कृत पाप-बहुल व्यापार।

गान्धारीक कटूक्ति सँ नृपतिक आगु अन्हार,
करथि कणिक निज उक्ति सँ नवज्योतिक संचार।

महाराज, अपनेक हित-प्रद हम किछु बात कहै छी,
क्षमा करब अपराध, हमर नृप जँ अघलाह बुझै छी।
विविध-विचारक चक्रवात मे अपने व्यर्थ बहै छी,
समयोचित प्रत्यक्ष प्रमाणित हम नृप-नीति कहै छी।

बिदुरक उक्ति गरल-सम बूझब, दूर रहब तें राजन्
हुनकहि गप मे पड़ि पाण्डव कें देलहुँ आध धरा-धन।
तकरे थिक परिणाम अहाँ केर पुत्र भेला दुख-दुर्वल,
पाण्डव लोकमनिक ध्वजा विश्वमे अछि फहराइत उज्ज्वल।

चारिम सर्ग

दया-धर्म सन्तोषक पुनि पुनि करता विदुर निरूपण
अनुचित त्रास देखौता, करता अचिर हृदय परिवर्त्तन ।
पाण्डव लोकनिक हितक हेतु ओ बहुतो बात बनौता,
पौरल माटिक पात्र दहीमे मूसर आनि खसौता ।

कय सन्तोष रहत यदि राजा गेल राज्य छै ओकर,
सीमित साधन सहत कोना क्यो प्रबल नरेशक ठोकर ?
सन्तोषक तँ बात करै अछि बुद्धि-विभव-बल-हीने,
अधिकाधिक सुख लेल यत्न नहिँ, की फल तकरा जीने ?

चतुर चलाकक राजनीति थिक अपने सोझ-मतिक छी,
तेँ निज पुत्रक लेल अहाँ बड़ भारी हेतु क्षतिक छी ।
आबहुँ चेतब उचित धराधिप, नृपक नीति अपनायब,
आसमुद्र क्षिति अधिकृत कय निज जीवन सफल बतायब ।

दया-धर्म-भगवान-भाग्य सभ शक्ति-विहीनक भाषा
ई अछि एकर दोहाइ वस्तुतः कुण्ठित-हृदयक आशा ।
शक्तिमान जन देखु किये मन तकर निरर्थक बासा,
अन्धकार पर विजय-लिप्सु रवि ककर करथि उगि आशा ?

भक्षक-भक्ष्य बनौने छथि जँ सौंसे विश्व विधाता,
दया-धर्म रहि गेल कतय औ कतय पाप दुख दाता ?
दया करत जँ मत्स्य तिमिंगिल की न मरत सागर मे ?
बाघ-सिंह की जीबि सकै अछि राखि दया अन्तर मे ?

कृषि कर्महि पर जीवन निर्भर मनुज समाजक राजन्,
अनगिन जीवक हनन-कर्म पर अछि अन्नक उत्पादन ।

'श्री अज्ञात'

चारिम सर्ग

जते जीव अछि जीवन सभहक अछि आधृत हिंसा पर.
प्राज्ञ-प्रबुद्धक तखनहुँ की बुझि दृष्टि दया ममतापर ?

दूर दर्शिजन विषय-वस्तु बुझि निजरुचि बाट धरै छथि,
जखन जतय जे युक्ति सुलभ निज लक्ष्यक पूर्त्ति करै छथि।
जित्वर बुद्धि पिजा ओन छूरी विश्व बूझू थिक खीरा,
मनुज मनस्वी सदा खाइ छथि मुड़ी काटि दय चीरा।

सुख सौविध्यक कोनो काज मे अछि स्वतन्त्र सभ प्राणी,
बनल किये पुनि मात्र मनुष्ये विधि निषेध संमानी ?
उचितानुचितक ध्यान रखै अछि जीव कहाँ क्यो मन मे ?
तखन किये क्यो राखत मानव फँसि कृत्रिम बन्धनमे ?

अनस्तित्व अछि स्वयं सिद्ध यदि निराकार छथि ईश्वर,
यदि साकार, कहाँ छथि होइत लोक-नयन पथ-गोचर ?
प्रकृतिक सहज स्वभावहि नित नव सृजनक कर्म चलैये,
जे नहिँ दृष्ट कदापि काल्पनिक ईश्वर मूढ़ मनैये।

मन-गढ़न्त क्यो व्यक्ति कहै अछि ईश्वर विश्व-विहारी,
दया-सिन्धु सम-दृष्टि समष्टिक नित नव मंगलकारी।
किये बनाबथि ककरहु निर्धन दुख दाहक चिर भाजन ?
ककरहु सुख-सुविधा, धन वैभव किये दैत छथि राजन् ?

दुष्कर्मक परिणाम दुःख जँ रुष्ट-हृदय हरि दै छथि,
सोचि सकैछी कते अनर्गल ओ अन्याय करै छथि।
काम क्रोध मद मोहादिक उर दोष विविधदय अपनहिँ,
ककरहु दोषी कोना बनाबथि कुटिल कर्म कय अपनहिँ।

चारिम सर्ग

कतय स्वर्ग छै ? कतय नरक छै ? के कहु देखि कहैये ?
धर्म-अधर्मक फल सुख-दुख ई के कय सिद्ध सकैये ?
पूर्व जन्म-सिद्धान्त असंगत, के घुरि कतय अबैये ?
कल्पित कथित शुभाशुभ कर्मक के फल भोग करैये ?

वातुल व्यक्तिक उक्ति युक्ति पर ध्यान न दै छथि ज्ञानी
बुद्धि-विहीने सत्य बुझै अछि धूर्तक गढ़ल कहानी
पथ-अवरोधक भ्रान्ति भंगकय निर्भय-चरण चलैये,
निश्चित लक्ष्यक चरम विन्दु पर वीर-पुरुष पहुँचैये।

बुद्धि-हीन जन चलय लीख पर चलय लीख पर गाड़ी,
लीख छोड़ि नर वीर चलैये उत्साहक अधिकारी।
नित नव रस्ता बना लैत अछि वीर पुरुष कुरुनन्दन,
सागर गिरि वन व्योम करै अछि तकर सदा अभिनन्दन।

ऐहिक सुख-सुविधाक ध्यान नहिँ स्वर्गक पुनि अनुवर्त्तन,
कल्पित कल्पतरुक आशामे भूमि-तरुक जनु कर्त्तन।
अर्थ काम पुरुषार्थ मनुष्यक सुख-संभोग-प्रदाता,
छूटल देह विमुक्त लोक पुनि कोन विश्व सँ नाता ?

अशन-वसन-सुख, सुरा सुन्दरी धन-जन जतय देखै छी,
शक्तिक महिमा ततहि स्वर्ग छै, तत्त्व वस्तु कहि दै छी।
शक्ति, न साहस, ऊहि न उद्यम अछि अदम्य उत्साह न,
तकरहि घर-आँगङन मे नरकक विविध बजै अछि बाजन।

अभिहित पाप प्रपञ्च कपट छल सँ धन-अर्जनकारी,
भूमि-भवन धन वैभव सँ अछि आनन्दक अधिकारी।

'श्री अज्ञात'

चारिम सर्ग

जप - तप पूजा - पाठ निरन्तर रामक नाम रटैये,
देखि रहल छी विविध - स्वरूपक दुख सँ काहि, कटैये।
स्वार्थ - सिद्धि मे अपन - परारक ख्याल करक नहिं चाही,
गुप्त-प्रगट युक्तिक बल रिपु केँ मृत्युक मुह मे साही।
सर - सम्बन्धिक राजनीतिसे गणना अबुझ करैये,
ममता - मोहक पड़ि पालाँमे अपटी खेत मरैये।
अपन स्वार्थ मे जकर उपस्थिति दै अछि कतहु अड़ंगा,
तकरा साफ करैत बहैये राजनीति केर गंगा।
अपन - आन की, बूड़ि - विज्ञकी, की भल लोक लफंगा।
सभ केँ साफ करैत बहैये राजनीति केर गंगा।
एक मात्र प्रत्यक्ष प्रमाणित जीवन - फल सुखभोगे,
संभव सुलभ युक्ति सँ तकरा सिद्ध करय उद्योगे।
राजनीति - निष्णात करै छथि सेह जखन दुर्योधन,
हर्षक विषय, किये पुनि अपने छी करैत आक्रन्दन ?
मधुर वचन सँ आकर्षित कय मन विश्वास जगाबी,
अन्ध कूप मे ठेलि शत्रुकेँ पथ निर्विघ्न बनाबी।
राजा छी, अपनाउ राजतप, राजनयक पुनि रस्ता,
शकुनिक पाशा खेल करत किछु हैत विजय बड़ सस्ता।
रानी सँ कहबनि हम सविनय, निन्द्य निराशा छोड़थु,
आशीर्वादक संग हृदय केँ पुत्र - प्रेम दिस मोड़थु।
देखथु सुतक भविष्य सुशोभन चिर मुद मंगल - दाता,
पुत्र कुपुत्रो भय सकैत अछि, होथि न कतहु कुमाता।

नास्ति वाद पर राज - नय कहि मुख बन्न करैत,
रानी दिस ताकथि कणिक, की छथि आब कहैत ?

चारिम सर्ग समाप्त

पाप-प्रपञ्चक पुष्टि मे नास्तिक-युक्ति सुनैत,
गान्धारी भय क्षुब्ध छथि खण्डन तकर करैत।

कणिक, अहाँकेर उक्ति-युक्ति केँ नहिँ हम करब पसिन्न,
हमरा आँखिक आगु नित्य अछि दिव्य ज्योति उद्भिन्न।
भौतिक ठठरी जकर व्याप्ति सँ अछि सन्तत गतिमान,
जकर विनिर्गम सँ पुनि निश्चल सैह थिका भगवान।

जड़ प्रकृतिक रचना अछि कोना ह्वैत सचेतन भान ?
जकर चेतना अछि विकीर्ण जग सैह थिका भगवान।
कारण बिनु नहिँ कार्य ह्वैत छै निखिल विश्व थिक कार्य,
ईश्वर बिनु कारण नहिँ दोसर कहथि चिरन्तन आर्य।

मन-वाणी सँ दूर विभा की दृश्य होथि बिनु ज्ञान,
देखि सकै अछि योग-युक्ति सँ विषय-विमुख मन प्राण।
जन्मक आन्हर कहि सकैत अछि नहि छथि दिनकर चान,
जकरा आँखि कोना से मानत तकरा लोक प्रमाण ?

जखन अनैतिक तत्त्व करै अछि विकल धरित्रिक प्राण,
लोक-नयन-पथ-गोचर ह्वै छथि निश्चय ज्योति महान।
कृष्ण रूप मे भेल आइयो अछि ईश्वर अवतार,
मुदा मनुज बुझि दनुज करै अछि नहिँ तकरा स्वीकार।

केहनो बलगर लोक कतहु की अछि पहाड़ उठबैत ?
बाल वयस मे कालसर्प सँ के अछि लोक लड़ैत ?
एहन अलौकिक काज कहै अछि रे उन्मद संसार,
छोड़ अनैतिक बाट भेल छथि निराकार साकार।

'श्री अज्ञात'

पंचम सर्ग

जनिकर मति-गति देखि धरातल अछि होइत आश्वस्त,
जनिकर दिव्य प्रभाव लोक केँ दै अछि पन्थ प्रशस्त।
जनिकर काज व्यथाकुल विश्वक सुख-शान्तिक आधार,
तनिकहि कहथि अनघ कवि कोविद परमेशक अवतार।

नृप तन्त्रक अवलोकि भयानक जन-दुखदायक काज,
गणतन्त्रक तेँ करथि घोषणा दीन बन्धु ब्रजराज।
स्वार्थ-अन्ध नृप निकर करै अछि मिलिजुलि हुनक विरोध,
उमड़ि रहल हो जेना वह्नि पर शलभ जाति दुर्बोध।

उदित स्वयं अछि ह्वैत मनुज-मन दया धर्म सद्भाव,
पालनशील थिकनि भगवानक करुणा-पूर्ण प्रभाव।
जँ अछि बाल अबोध कदाचित कूपक दिस ससरैत,
के अछि एहन कठोर दौड़ि नहिँ तुरत उठा अछि लैत ?

पोषण पाबि हृदय मे जँ अछि दनुज तत्त्व बलवान.
जँ अछि वारंवार पिटाइत देव तत्त्व म्रियमाण।
एहन मनुष्यक हैत कोना नहिँ हृदय कुलिश पाषाण,
तकरा लेल अवश्य निरर्थक दया धर्म भगवान।

लोकक सहज दया की विबुधक दया धर्म- उपदेश,
तेँ अछि एखनहुँ वसुधातल पर सुख-शान्तिक लवलेश।
दया धर्म नहिँ नर जँ बूझत के बूझत पुनि आन ?
अपनहिँ मे लाड़ मरत किये नहिँ उन्मद मनु - सन्तान ?

दया - प्रभावित नीति धर्म थीक धर्म - मूल सुख शान्ति,
तकर अवज्ञहिँ जन्म लैत अछि कतहु लयंकर क्रान्ति।

पाँचम सर्ग

राज - प्रशासन चलि सकैत छै ईश्वर केँ अवमानि,
दया धर्म बिनु मुदा चलत नहि जरत धान बिनु पानि।

जँ अछि हृदयक भाव लोक - हित, जँ चरित्र अछि पूत,
आस्तिकता सँ दूर विचारहु सँह धार्मिक पूत।
दीन - दरिद्रक हित - चिन्तक जँ नृपतिक नीति-विधान,
तकरा सँ बढ़ि के अछि आस्तिक ? लोकहिमे भगवान।

नास्तिक लोको जीवन-पथमे ह्वै अछि जखन विपन्न,
सूझि पड़थि अवलम्ब ईश्वरे सर्वशक्ति - सम्पन्न।
अस्तिवाद तेँ अपन बनौने सत्ता अछि अनिवार्य,
प्रवल भक्ति सँ की न करै छथि जगदीश्वर जन कार्य ?

ईश्वर नहिँ दस - वीन ह्वैत छथि, छथि सदैव ओ एक,
नाम - रूप किछु दय सकैत अछि भक्तक बुद्धि विवेक।
अपन मान्यता कहत नीक आ आन जनक अधलाह,
एहने अज्ञ - अधम सँ सभयुग मे अछि विश्व तवाह।

अस्तिवाद जँ द्वेष - दुष्ट अछि हिंसा पर उतरैत,
लोक - शान्ति केँ अपन दुराग्रह सँ अछि भंग करैत।
एहन अस्ति सँ नास्ति वस्तुतः बूझथि नीक महान,
अखिलेशक तँ असल अर्चना करब लोक-कल्याण।

रचथि विधाता सत्य जगत केँ भक्षक - भक्ष्य - प्रधान,
सृजनक संगहिँ थिकनि विश्व - हित हुनके हरण - विधान।
धरती तल पर जीव जन्म लय जँ चिर रहय जिवैत,
रहत कतय ? की खैत ? कहू की छी अनुमान करैत ?

'श्री अज्ञात'

पाँचम सर्ग

दुर्लभ बुद्धि-विवेक मनुष्यहि केँ केवल अछि प्राप्त,
तेँ साधारण जीव जकाँ नहिँ बौद्धिक सोच समाप्त।
बाघ-सिंह सम हैत कोन विधि क्रूर मनुष्यक वृत्ति ?
सत्य अहिंसाऽऽचरण वस्तुतः नर-बुद्धिक विच्छित्ति[1]।

दै छथि ईश्वर सदय मनुष्यक दुर्लभ देह ललाम,
जा सकैत अछि जीव जतय सँ मुक्त परात्पर धाम।
अधला नीक विधान विवेकक थिक शाश्वत संदेश,
अपनहिँ जकाँ बुझै छथि ज्ञानी अनको कष्ट-कलेश।

अशन शयन भय मैथुन मे अछि जगतक जीव समान,
पृथक करै अछि भूरि भाग्य सँ नर केँ विकसित ज्ञान।
तेँ नहिँ लक्ष्य कदापि मनुष्यक एक मात्र सुख भोग,
जरामरण सँ उठि मुक्तिक पथ गमन एकर उपयोग।

मनुजक जीवन लेल किसानक अछि हिंसा अनिवार्य,
मानल जा न सकै अछि तकरा दोष-दुरितकर कार्य।
प्रायश्चित्त करै अछि तैयो तकरे कय अनुमान,
प्राप्त अन्न सँ 'अगौ[2]' करै अछि दीन-दुखी मे दान।

सहज कर्म निर्दोष, दोष पुनि पर कर्मक प्रत्याश,
करय न कखनहुँ अशन माँस मृग, चरय सिंह नहिँ घास।
निज कर्मक अनुसार योनि मे अछि सभ जीव अबैत,
तदनुकूल हिंसहु मे नहिँ छै अघ अपराध बनैत।

१—विच्छित्ति=चमत्कार, सौन्दर्य। २—अगौ=अग्रधान्य, अन्न तैयार कयला पर किसान एक सूपधान अलग राखि लैत अछि, जे दीन दुखी केँ प्रदान करैत अछि।

पाँचम सर्ग

जीव अन्न मे अन्न वीर्यमे वीर्य योनि मे सिक्त,
अपन अपन आकार लैत अछि रज-कण सँ संपृक्त।
संचित पूर्व शुभाशुभ कर्मक परिणति पुनि सुख दुःख,
पूर्व जन्म-सन्देश देथि तें निर्मल मतिक मनुक्ख।

देखल पूर्व शरीरक स्मृतिसँ कते बाल नव जात,
जननी जनक जनन थल प्रभृतिक अछि कहैत सभबात।
जन जिज्ञासुक अन्वेषण सँ सत्यापित अछि ह्वैत,
पूर्व जन्म-सिद्धान्त काल्पनिक क्यो छी व्यर्थ कहैत।

पूर्व सुकृतसँ अघकर्महुँ मे ककरहु लग सुख शर्म,
शुभ कर्महुँ सँ कष्टक जड़िमे पूर्व जनुक दुष्कर्म।
दिव्य-दृष्टि ऋषि मुनि जन निकरक अछि शाश्वत सिद्धान्त,
निर्मल जन मानस नहिँ किन्नहुँ भय सकैछ दिग्भ्रान्त।

सत्त्व रजस्तम तीन गुणे अछि निर्मित जीव अशेष,
तकरे तारतम्य पर सभ मे गुण-अवगुण-बिनिवेश।
ज्ञानी दुर्गुण जीति ज्ञानसँ गुण कें प्रश्रय देथि,
कय उत्तीर्ण परीक्षा प्रकृतिक जन्म सफल कय लेथि।

अपन-परारक ख्याल करत नहिँ निविड़ स्वार्थ सँ अन्ध,
सत्यानाशक करत किये नहिँ अपनहिँ अपन प्रबन्ध।
निर्मम बालि अनुज कें घर सँ दूर भगौलनि मारि,
की फल भेल, गेला चल रामक शर चढ़ि यमक दुआरि।
जकर काज सँ मुदित समाजक कुल परिवारक लोक,
अन्धतमस मे व्याकुल जगकें दै अछि नव आलोक।

सैह तनय कोनो प्रसविन्त्रिक सैह धरित्रिक पूत,
तकरहि सँ अछि धन्य देश दिक, अन्य अपावन मूत ।

से थिक कणिक, मनुष्य जकर यश चरित-चारु अवदात,
उपकृत जन गुणगान करै अछि उठितहि जकर परात ।
अपन स्वत्व-सुख बिसरि दयासँ द्रवित जकर मन प्राण,
लोकक हित मे करय वरण विष सह मनुक सन्तान ।

जकर बुद्धि बल बिभव दिगञ्चित वट बृक्षक घन छाँह,
जुड़ा जाइ अछि आबि जतय जन आतप-तप्त-तबाह।
जकर उदय उत्थान सूर्य सम करय त्रास-तम ध्वंस,
कहथि सुधीजन तकरहि भरि मुह मानव-कुल अवतंस ।

कूट-कपट सँ घृणा निरन्तर धर्मक प्रति उत्साह,
दीन दुखी दुर्बल जन-हृदयक करय दूर दुख दाह ।
दुरित-वृत्ति सँ विमुख बनौने जे अछि उन्नत-भाल,
से थिक मानव, अनिश गर्व अछि जकर कीर्त्तिदिक्काल ।

स्वार्थ-सिद्धि मे मग्न, करै अछि भग्न लोक-कल्याण,
कोनो कर्म कुकर्म करै मे नहिँ मुह तनिक मलान ।
सिरजि उकाठक ठाठ करय जग-सुख शान्तिक अवसान,
से की मनुज ? दनुज थिक दुर्भग रहितहुँ मनुज समान।

हमर न बेटा एक शतेटा बेटा देश अशेष,
प्रजा-पूत मे भेद न कनियों नृप-नीतिक सन्देश ।
अछि संभावित एकर काज सँ जनपद भरिक विनाश,
मातृ जनोचित प्रेमक रहलै कतय कोन अवकाश ?

पाँचम सर्ग

धर्म-धुरन्धर पाण्डव पाँचो अछि बल-बुद्धि निधान,
बेटहु सँ बढ़ि प्रणत, किये हम करब तकर हित-हान ।
जतय धर्म अछि, ततय कृष्ण छथि, जतय कृष्ण, तत जीति,
हम कुल-बोड़न एहन पुत्रपर करब कोन विधि प्रीति ?

ममता मोहक चक्रबात मे गेल नृपक उड़ि ज्ञान,
पड़लनि बेस पसिन्न अहाँ केर एखन नास्ति-विज्ञान ।
बन्धु-विरोधक फल प्रलयंकर, छी हम सोचि विखिन्न,
भेटत कोना समर्थन, तेँ छनि हिंनक पड़ायल निन्न ।

मनक खेत मे चारु विचारक उन्नत फसिल लगौत,
धैर्यक चारू कात आरि दय प्रेमक पानि पटौत ।
सद् गुण ग्रामक खाद कालपर सोचि-समुझि छिड़िऔत,
सुख-शान्तिक उपजा तकरा घर कहू किये नहिँ औत ?

जँ अछि जागृत ज्ञान उर ठहरत कोना कुतर्क,
अन्धकार रहतैक की जखन रहै छथि अर्क ।

बिदुरक सन ज्ञानी पुरुष भीष्म छोड़ि के आन ?
चाहथि जे निश्छल हृदय कुरुवंशक कल्याण ।

पाँचम सर्ग समाप्त

—०—

छट्ठम सर्ग

विकच कुसुम कानन रुचिर कानन मध्य कुटीर,
छथि कुटीर मे व्यास मुनि तप सँ दीप्त शरीर ।
हुनके दोसर सँस्करण बिदुर आगु आसीन,
कहथि दुष्ट दुर्योधनक वञ्चक वृत्ति नवीन ।

महामहिम हे पिता अहाँ लग आर्त-हृदय हम अयलहुँ,
भरतवंश मे आगि लगैपर अछि तेँ वन-पथ धयलहुँ ।
त्रिकालज्ञ, अपने बिनु दोसर कुरुकुल त्राण करत के ?
भासल नाव मोनि दिस दोसर कर करुआरि धरत के ?

सगरो देश अशान्त, तहू पर दुष्टनयिक दुर्योधन,
हैत कोना विस्फोट, बनौने तकरे अछि आयोजन ।
कय दिन सँ ओ अन्न पानि तजि अनशन अछि अपनौने,
करत बाप केँ विवश तकर अछि वञ्चक बाट बनौनें ।

अनशन तोड़ि सकैये जँ हठ मानि ओकर नृप लै छथि,
पाण्डव लोकनिक संग दुरोदर-खेल करय जँ दै छथि ।
वित्त-विभव-यश देखि देयादक लोभ हृदयमे जागल,
कुकुर जकाँ अपनहिँ मे लड़बा लेल बनल जनु पागल ।

प्रति निधि द्यूतक बनत शकुनियाँ जीति लेत धन-धरणी,
पाण्डुपुत्र केँ निःस्व बनाओत तकर रचि अछि सरणी ।
कुटिल कर्ण, दुर्दुष्ट दुश्शासन शठ शकुनी सनफौलक,
कौसिक धार स्वयं उच्छृंखल पुरबा उग्र बनौलक ।

जूआ बाँस रगड़ सँ लागत कुरुकुल मे अगड़ाही,
ईर्ष्या द्वेष जगत मे जागृत जायत पसरि पसाही ।

छट्ठम सर्ग

बन्धु बन्धुमे बैर-विरोधक हेतु दुरोदर बनतै,
फोसरी हैत भोकन्नर अन्तिम देश दिशा सभ कनतै ।

अभिनव तन्त्रबाद पर सभ ठाँ बाद-विवाद चलैये,
गारिक भाषा अहंकार सँ ककरा के न कहैये ?
गोल बना दू दल मे पहिनहिँ गाँ विभक्त अछि भारत,
अवसर पावतहिँ अपन अपन दय आहुति आगि पजारत ।

अपनहुँ न्योति दुहू दल देशक शूर-बीर जन अनते,
विनहुँ बजौने कते लोभ सँ बलि केर बकरा बनते ।
बड़ बड़ वीरक एखन मण्डली धनलय युद्ध करैये,
युद्ध बनौने अपन जीविका समर-भूमि उतरैये ।

नीति-अनीति विचारि-बूझि के ककर बनै अछि संगी,
भलसँ अधिक लोक संख्या मे खलक बनै अछि संगी ।
खल जन, जे अछि अधिक विश्वमे अपने सन जन ताकय,
चोर-चोर मसिऔत बनय पुनि अन्यजनक धन ताकय ।

केहनो पापिक अर्थ-शक्ति लग लोभें लोक जुड़ैये,
लोभक चारू कात जेना जन तेलिक बड़द घुरैये ।
अपन आँखियो लुब्ध लोक केँ काज कोनो नहिँ दैये,
सूर्य-किरण मे हरिण प्यास सँ व्याकुल वारि बुझैये ।

ज्येष्ठ रविक मण्डल दुपहर मे देखब की संभव छै ?
हिम-सागर मे फँसल लोक केँ उबरब की संभव छै ?
अजितरण-विज्ञान भारतक आइ तेहन उन्नत छै,
दूर-अदूरक लोलुप लुण्ठक लोक सभक शिरनत छै ।

'श्री अज्ञात'

छट्ठम सर्ग

संभावित रण मध्य हैत से शक्ति निरर्थक स्वाहा,
बचती वनिता मात्र बहौती अश्रुजलक चिर बाहा।
गरिमा ज्ञान प्रभाव योग्यता बहि जायत रण सरि मे,
दुर्बल दीन दुखी बनि भारत हैत प्रथित भूभरि से।

अपनहुँ सठबे करत सुयोधन देशक रत्न सठौते,
जाँतक तरमे अन्नक संगहिँ घुणहुँ केँ पिसबौते।
अतल पानिमे एक पातकी भरलो नाव डुबौते,
विकृत एक मस्तिष्क पिताजी, प्रलय क राग बजौते।

उचित छलैक अपन शासन केँ नीक नवीन बनबितय,
उत्पीड़ित सीदित जनता केँ सुख सौविध पहुँचबितय।
विपथगामि तत्त्वक उन्मूलन सबल हाथ सँ करितय,
शक्ति समृद्धिक संग देश मे यशक चान चमकबितय।

अर्थक अनुचित लोभ हृदय सँ धैर्यक बलेँ भगबितय,
संयत शान्त सरल सज्जीवन जँ सभ भाइ बनबितय।
गुण बल शील सुभग पितिऔतक संग भेल जँ रखितय,
धरती केँ नव स्वर्ग बनबितय यशक चान चमकबितय।

हारि गेला कहि भीष्म पितामह हारि गेला द्विज द्रोणो,
कृपाचार्य कहि कते बुझौलनि पड़ल प्रभाव न कोनो।
हठ सँ हेठ न भेल पातकी आधिरथिक सनकौने,
भेल निरर्थक महिषिक आगू केहनो बेणु बजौने।
पाण्डु तनय निर्दोष सदासँ रहल रहत से एखनहुँ,
तकरा सभकेँ कहल जाय की दोष राग बिनु देखनहुँ।

छट्ठम सर्ग

छल कपटक रस्ता सँ जँ अछि छीनि लैत धन धरणी,
पाण्डव लोकनिक लेल छोड़ि रण रहत कोन बचि सरणी ?

तेँ ध्वंसक ओरियान कोनो बिधि मोड़ि सकी तँ मोड़ू,
फूटल भाग्य भारतक अपने जोड़ि सकी तँ जोड़ू ।
जोड़ि सकैत छला मन दृढ़ कय स्वयं अम्बिकानन्दन,
भ्रष्ट-बुद्धि सँ काज लैत छथि, नीम बुझै छथि चन्दन ।

क्यो किछु कहतनि, से सभ सुनता, बूझि प्रभावित पड़ता,
पुत्रक ममता-ग्रस्त अन्तमे ओकर जेहन रुचि करता ।
चार्वाकक अनुयायि कणिक केँ निशि मे छला बजौने,
द्यूतक पक्ष-समर्थन मे किछु मन्त्र मधुर छथि पौने ।

भरिसक दुर्योधनक दुराग्रह मानि धराधिप लेलनि,
फन्ना दिस नहिँ ध्यान घुरघुरा केवल दृकपथ गेलनि ।
पुत्रक संमत लोभ-वशंवद द्यूतक खेल करौता,
शाखा-पल्लव हीन ठूठ बनि जा जीबन पछतौता ।

लोक-वेद सँ देश-दिशासँ सभ दिन गंजन सुनता,
बूनथि बीआ जखन बबूरक आम कहाँ सँ चुनता ?
शोकाकुल क्रन्दन परिवारक सुनि सदैव शिर धुनता,
खसता अपनहिँ ओन्ह-पोन्ह भय तेँ जनु खत्ता खुनता ।

भक्ति भाव आदर सभ पाण्डुक बिसरि अन्ध नृप गेला,
तकरे पुत्रक राजपाट-धन-हरण लेल वृत भेला ।
पुत्रक लालच लेल ध्यान छनि भातिज आन बुझै छथि,
वञ्चक वगुला केर प्रेममे हंसक जीवन लै छथि ।

छट्ठम सर्ग

लोभ भयंकर दोष, मनुष्यक उर छथि दैत विधाता,
निष्ठुर बनि नर सहज प्रेम सँ तोड़ि लैत अछि नाता।
बुद्धि-हरण कय लालच ककरहु पापक पथ धरबैये,
आशा सुखहिक किन्तु विपत्तिक दल-दल मे फँसबैये।

अर्थ बनौने अछि दुनियाँकेँ ज्ञान-हीन अविचारी,
कोनो कर्म करै पर उद्यत धनक लेल नर-नारी।
पिता-पुत्रमे भाइ-भाइ मे धन अछि झगड़ बझौने,
पेनक छिच्छा केहन हैत ? अछि छीपे जखन घिनौने।

राजा राजपुरुष सभ बाहर नैतिक प्रवचन दै छथि,
किन्तु शोषणक काल नीति सँ हाथ जेना धो लै छथि।
शासन-यन्त्रक हाथ निरंकुश माङ करय उत्कोच[1]क,
चोरि, कोनो नहिँ बुझल जाइये वस्तु एखन संकोचक।

नृप सभ कर्म निधान, कोना नहिँ बनत लोक जुआरी,
नारी जनक सतीत्व कोना नहिँ लूटि लेत व्यभिचारी।
एकक आठ कोना नहिँ टानत कपट-कुशल व्यापारी,
न्याय देत के ? न्यायद अपनहिँ सभ विधि पाप पुजारी।

असह रौद, जल वृष्टि भयानक, शीतक लहरि चलैये,
सहि सभ तूर किसान खेत मे दिन भरि काज करैये।
संघ-बद्ध नहिँ, वदन बोल नहिँ काज न अवसर दैये,
जोंक जकाँ लागल अछि शासन, सभ बपहारि कटैये।

अपन वस्तु पर वणिक-समाजक अपने जूति चलैये,
मुदा किसानक उत्पादन पर शासन मूल्य अंकैये।

१—उत्कोच=घूस।

छट्ठम सर्ग

एक अंक पर मूक किसानक जँ अछि अन्न विकाइत,
वणिकक क्रेय वस्तु पर दशवड़ अछि गेंठक चल जाइत।

रक्षक भूप हैत यदि भक्षक हैत केहन पुनि जनता ?
निष्ठुर शासक केर प्रजाकी सीखि सकत सज्जनता ?
उपरहि आँखि रहै अछि लोकक रूढ़ जीवनक रथ पर
निः संकोच चलै अछि मानव शीर्ष-पुरुष-कृत पथ पर।

काम नियन्त्रण-हीन, मनुष्यक संख्या अछि उधिआइत,
नहिँ नियमित सहवास, विपुल मुख नित नव अछि बहराइत
विकट अभावक अन्धतमी मे निर्मम छीना-झपटी ।
अर्थ-पिशाचक मुदित मण्डली उठि बैसल छल-कपटी ।

कामक किंकर लोक, कुकर्मक कहत कोन विधि, बाँकी
कोन चकितकर पाप करत नहिँ अपन प्रदर्शित झाँकी।
सुरा-सुन्दरी, चोरि-डकैती झूठ कपट छल फाँकी
अछि चलैत व्यभिचार निरंकुश, गम्यागम्य कथा की ?

नारिक शील हरण पर जहिँ तहिँ उतरल मनुज घिनौना,
प्राण-हरण पर उतरल नारिक व्याहि चाहि धनसोना।
उत्पीड़क लय तिलक मङैये यौतुक अमित पछारी,
नहिँ देलक तँ प्राण लैत अछि नारिक नर अविचारी।

दयाधर्म सम्बन्ध औचितिक नहिँ किछु कतहु पुछारी,
बापक दुख अवलोकि कनै छथि देशक आइ कुमारी।
अपमानित भय रहल जेना छथि आइ धरापर नारी,
बूझि पड़ै अछि आबि रहल छै काल कोनो बड़ कारी।

छट्ठम सर्ग

अनुचित कर्म करैत लाज नहिँ प्रत्युत तकर प्रशंसा/
अर्थक कारण न्याय गेल बनि केहनो निर्दय हिंसा ।
कतय जाइ अछि राष्ट्र' ताहि दिस ध्यान कहाँ छै ककरहु ?
हैत तकर परिणाम केहन, से ज्ञान कहाँ छै ककरहु ?

बिनु श्रम अर्जन मे अछि लागल समुदय चण्ड चलाकक,
बुड़िबक बुद्ध बुझल जाइ छथि औचित्यक परिपालक ।
सभतरि वातावरण अशान्तिक शोचनीय जन जीवन,
बुद्धिज्ञान धृति-धर्मक कयलक अर्थक लोभ उकन्नन ।

जते प्रकारक पाप-ताप अछि हेतु तकर थिक अर्थे,
निश्चित नियम विधान पिताजी, बूझि पड़ै अछि व्यर्थे ।
नैतिक मूल्यक बुद्धि-विवेकक आदर-मान कहाँ छै ?
आर्य जनक उपदेश कथा दिस ककरो कान कहाँ छै ?

सभ पापक जड़ि एक मात्र अछि निरवधि अर्थ-पिपासा,
तकर निवारण हैत कोन विधि, हृदय तीव्र जिज्ञासा ।
दुस्तर तृष्णारुप रोग सँ ग्रस्त त्रस्त अछि धरणी,
तकरा दूर करत, से नहिँ की अछि उपाय वा सरणी ?

प्रकट व्यथा कय मानसिक
विदुर मौन छथि ह्वैत,
ताकथि मुह द्वैपायनक
की छथि पिता कहैत ।

कपट-द्यूत-रचनाक फल कुरुकुल-नाश जनैत,
दैत विदुरकेँ सान्त्वना छथि मुनि व्यास कहैत ।

छट्ठम सर्ग

विदुर, अहाँकेर कथन मानसिक दुःखक थिक उद्घोष,
संसारक कल्याण - कामना केर विफल आक्रोश।
किन्तु न होउ अधीर विज्ञवर, नहिँ मन व्यग्र बनाउ,
दैवक छनि किछु अन्य मन्त्रणा मनकेँ बूझि बुझाउ।

सरल-हृदय छी, सर्व - हितैषी कूट-कपट सँ दूर,
सत्य अहिंसा केर पुजारी सहज प्रेम सँ पूर।
तेँ धृत-पुत्रक गमन ध्वंस दिस छी अवलोकि तबाह,
अद्भुत बात, अहीँ केँ हेहर कहय अधम अधलाह

निश्छल जनकेँ छली कहैये स्वयं छली भय रुष्ट
सबकेँ दुष्ट बनौत अधम जे स्वयं रहै अछि दुष्ट।
कहय सत्य केँ झूठ स्वयं जे अछि झूठक आचार्य,
स्वार्थ-अन्ध जन नहिँ बुझैत अछि, की थीक कार्य अकार्य।

जे किछु बजलहुँ अहाँ दुःख सँ अछि अक्षरशः ठीक,
हमहुँ जनैछी, कुरु कुलराजक नहिँ अछि लच्छन नीक।
पतनक दिस ससरल जाइत अछि निश्चय भूप-समाज,
सभ सँ अग्रगामि दुर्योधन प्रगट कहै अछि काज।

राजसूय केर अन्तकाल हम कहने छलहुँ प्रचारि,
तेरह वर्षक बाद बन्धु-गत हैत महारण रारि।
कारण तकर बनत दुर्योधन कलिकाल क अवतार,
हैत भारतक भाग्य - विधायक भीषण नर-संहार।

देखि भविष्यक अन्तराल केँ जे हम कहलहुँ बात,
तकरे सूत्रपात खल कयलक दुर्योधन दुर्जात।

छट्ठम सर्ग

करू अपन भरि यत्न जुआरिक चलइ न छलमय खेल,
कर्महि मे अधिकार अपन नहिँ होउ व्यग्र फल लेल।

सेबह पहिने धर्म, तखन धन, धन सँ सेबह काम,
बहतहु शान्ति सुखक जीवनमे सरिता नित्य ललाम।
वारवार हम चिकरि कहैछी ऊपर हाथ उठाय,
हमर बात के सुनत ? धर्म सँ दूर पड़ायल जाय।

उच्छृंखल जन-मन मे लै अछि जन्म जखन अभिमान,
दुहिता तकर विकट बर्बरता करय रणक ओरियान।
सम्प्रति आबि तुलायल तेहने अछि कालक अभिशाप,
योग-दृष्टि सँ देखि कहै छी की कय हैत विलाप ?

तेँ हम कहलहुँ सत्यवती[1] केँ अहाँ अचिर वन जाउ,
जाथु सङ हिँ सङ पुत्र बधू सभ, कय तप सद्गति पाउ।
जननि, भविष्यत् काल अबै अछि बहुत अधिक अधलाह,
कुरुवंशक संहार हैत मा, की देखब दुख-दाह।

जन-संख्या केर बाढ़ि, अवाञ्छित, लोक चरित्रक ह्रास,
दुर्घटना उत्पात निरन्तर केतु-उदय आकाश।
सभटा युक्ति जुटल अछि तेहने निकट तुलायल नाश,
लंका मे कपि आगि लगाबथि, वायु बहय उनचास।

गृह पशु धरती स्वर्ण सुन्दरी जते नगर पुर गाम,
एकहु लोकक लेल पुष्ट नहिँ हैत तुष्ट नहिँ काम।

१—सत्यवती=व्यासक माता, धृतराष्ट्रक पितामही, मलाह राजक कन्या।

छट्ठम सर्ग

तखन विचारक संग तुष्टिये शान्तिक एक उपाय,
देत किये क्यो ध्यान ताहि दिस गेल जेना बौराय ।

लालच-लोभक डरें भुवनसँ गेल ससरि सन्तोष,
तकरे फल थिक उभरल सभतरि निरवधि दुर्गुण दोष ।
धृति-धर्मक सम्मान न आदर, रहल न सत्यक प्रेम,
सत्यानाशक काल उपस्थित, हैत कोन विधि क्षेम ?

सुख-सौविध्यक वस्तु नित्य नव बनल देशमे जाय,
कामक भोग विलासक तृष्णा अधिकाधिक उधिआय ।
चाही अर्थ तदर्थ, तकर फल बढ़ल विविध अविचार,
सहसह करय देश मे डाकू वञ्चक चोर चुहार ।
दिन भरि शासन चलय नरेशक अपगत-बाध सबाध,
अबितहिँ राति बनै अछि राजा डाकू चोर दुसाध ।

अपनाकेँ बुधियार बुझै अछि गर्वित मनु-सन्तान,
बुझितहुँ अधला स्वयं करै अछि दुखकष्टक ओरियान ।
जीवन चिन्ताक्रान्त बनाबय बहुत अधिक सन्तान,
कामुक क्रीड़ा-लीन किये नहिं दै अछि तैपर ध्यान ?

हगने-मुतने पड़ल सेज क्यो भूखें क्यो, किकिआइ,
कंकालक आकार बनौने ज्वर सँ क्यो चिचिआइ ।
अपनहिं मे क्यो कतहु करै अछि गुत्थम गुत्थ लड़ाइ,
विपुल अपत्यक[1] दुखेँ दम्पती[2] अन्त काल पछताइ ।

१—अपत्य=सन्तान । २—दम्पीत=स्त्री पुरुष ।

छट्ठम सर्ग

लोकक विपुल वृद्धिसँ भूपर गेल बहुत बढ़ि भार,
जटिल अभावक ज्वालामे अछि नीति नियम जरि छार।
पाप प्रपञ्चक नदी अभावक गिरिसँ चलल अनेक,
धर्म कर्म संयम सभ भासल, भासल बुद्धि-बिवेक।

भय बिनु उद्धत शान्त रहत नहिँ तेँ आयल नृपतन्त्र,
नरनाथक छल प्रजा-पालने त्याग-पूर्ण प्रिय मन्त्र।
रन्तिदेव, शिबि, राम, भरत छथि तकर दिव्य दृष्टान्त,
राज धर्म-परिपालनसँ छल देश - दिशा सभ शान्त।

त्याग तपस्या सात्त्विक जीवन नहिँ नृप लोकनिक आइ,
प्रजा जनक उत्पीड़न मे छथि सभ बनि गेल कसाइ।
करत अनैतिक तत्त्व कियै पुनि अपन वृत्ति मे लाथ,
जीवन अछि असुरक्षित सभहक अछि सभ लोक अनाथ।

हारल-थाकल लोक तकै अछि तेँ कोनो नव बाट,
प्रश्न उठबितहिँ नृपक लगै अछि तुरत गालपर चाट।
नर-नारी अतएव धरित्रिक हरिक करै अछि आस,
चक्रधरे हा कय सकैत छथि दूर हमर सन्त्रास।

गणतन्त्रे अछि मात्र देशमे दोसर एखन विकल्प,
तकर प्रसारण लेल करै छथि नहिँ प्रयत्न हरि अल्प।
शक्तिमान छथि, लक्ष्य लोक-हित, उक्ति सर्व शुभसाम,
देखू विदुर, तथापि स्वार्थ रत हुनक भूपगण बाम।
भूपहु सभमे युद्धक खतरा अछि सभ ठाम चलैत,
दुर्बल भूप बलाधिक भूपक अछि रण-लक्ष्य बनैत।

छट्ठम सर्ग

शान्त न जनता, शान्त न जनपति कतहु न क्यो अछि शान्त,
केन्द्र बना शासन गणतन्त्रक तेँ चाहथि श्रीकान्त ।

पाण्डव लोकनिक बुद्धि ज्ञान धृति बल विक्रम उद्दीप्त,
मानवताक प्रबल संरक्षक नहिँ कनियों अवलिप्त ।
तेँ चाहथि यदुनाथ, युधिष्ठिर देशक बनथु प्रधान,
करै जाथु सभ प्रान्तक प्रतिनिधि गणतन्त्रक निर्माण ।

दनुज कल्प नृप कहय, किये हम कृष्णक मत मनबैक ?
राज्यक जनता केँ सनकौलक, तेँ की हम डरबैक ?
हम स्वतन्त्र स्वामित्व किये तजि ककरो किछु सुनलैक ?
हाथक मूस बिहरि मे दय की 'करे करे' करबैक ?

लोकक सुख दुख नहिँ बुझि, जे नृप अछि करैत अन्याय,
तकरा हरिक विचार गरल सम अनुचित अशुभ बुझाय ।
से सभ शत्रु बुझैत कृष्णकेँ फाँड़ बान्हि अछि ठाढ़,
गोल बनौने अपन देश मे तनल तेष मे गाढ़ ।

सभहक नेता जरासन्ध छल बल-गर्वित मगधेश,
सेनापति शिशुपाल तकर छल कृष्णक शत्रु विशेष ।
देशक ढेर नृपतिकेँ कयलक गिरिक गुहा मे बन्द,
जकर सभा मे लोकक प्रतिनिधि छल बजैत स्वच्छन्द ।

तेँ व्रजवल्लभ कूट नीतिसँ भीमक संग लड़ाय,
उन्मद जरासन्ध केँ देलनि यमनगरी पहुँचाय ।
मगधेशक कारा सँ कयलनि नृप-निकरक उद्धार,
हर्ष-विभोर करय सभ लागल कृष्णक जय जयकार ।

'श्री अज्ञात'

छट्ठम सर्ग

राजसूय मे रहय निमन्त्रित पाण्डव सँ शिशुपाल,
हेरि हरिक सम्मान सभामे बिगड़ि उठल तत्काल।
सभ्यताक सीमा टपि देलक जखन शताधिक गारि,
चक्रसुदर्शन चला चक्रधर लेलनि कण्ठ उतारि।

सहज अहिंसक चेतना तेँ छथि विदुर पुछैत,
दुष्ट - दमनमे की सफल हिंसेटा अछि ह्वैत?

सत्य अहिंसा प्रेम पिताजी, थिक उत्कृष्ट बिचार,
मानवताक प्रबन्ध संरक्षक सुख . शान्तिक आधार।
चिरसँ एकरा परमधर्म तेँ कहथि - सुधी - समुदाय,
पालन तकर करैत कोनो की नहिँ खल-दमन उपाय?

विदुरक प्रश्न सुनैत,
छथि मुनि व्यास कहैत।

उच्च विचारी कहथि विभीषण उचित सत्य - हित बात,
बदलि न सकला हृदय, दशानन बिगड़ि चलौलक लात।
एहन जघन्यक लेल हनन बिनु अछि दोसर पथ कोन?
सस्पृह ताकि - ताकि अछि हारल विबुध - समाजक मोन।

लोक अधिक तँ सरल स्वभावक, विरल व्यक्ति दुर्बुद्धि,
से अगिलह अनिवार्य विश्वमे बना दैत अछि युद्धि।
सत्य - अहिंसा प्रेम ततय नहिँ दैत कोनो अछि काज,
तेँ ने विश्वामित्र बजा वन आनथि रविकुल - राज।

सत्य अहिंसा प्रेम दया अभिनन्दनीय गुणग्राम,
जन-जातिक कल्याण - विधायक सुख सौजन्यक धाम।

छठम सर्ग

तिरस्कार कय तकर करय क्यो उत्कट अत्याचार,
तकरालेल तखन आवश्यक हिंसेटा प्रतिकार।

सत्यो कतहु असत्य ह्वैत अछि लोक-हितक प्रतिकूल,
मिथ्ये सत्य बनै अछि जगतक हित-साधन-अनुकूल।
दानव दल छल विश्व समाजक नित्य शत्रु बलवान,
अमृत बँटै केर बेरि झूठ कहि तें ठकलनि भगवान।

कतय कतय नव घटित पिताजी, अछि चलैत गणतन्त्र,
की सुख सुविधा दय सकैत अछि अभिनव शासन-यन्त्र।
विपुल सदस्यक विहित मन्त्रणा रहत कोन विधि गुप्त ?
कखनहु विकृत नीति सँ हैत न गण-शासन से लुप्त ?

शासन-पद-आसीन मनुष्यक जँ अछि धैर्य अटूट,
लालच लोभक लेल परस्पर जँ नहि ह्वै अछि कूट।
धर्म अपन बुझि प्रजा-पालनक जँ जपैत अछि मन्त्र,
की नहि दय सकैत अछि जनता कें गण शासन-तन्त्र ?

गणतन्त्रक शासन अछि देशक मध्य कनेको ठाम,
कृष्णक द्वारा द्वारवतीमे सभ सँ बढ़ि अभिराम।
अशन वसन बिनु दीन दुखी नहि रहल कतहु क्यो व्यक्ति,
राज्यक उन्नति लेल लगौने अछि सभ अविचल शक्ति।

अर्थ-पिपासा केर कतहु नहि द्वारवतीमे स्थान,
छोट-पैघ नहि बुझल जाइये सबहक मूल्य समान।
शिक्षा अछि अनिवार्य, रहल नहि कतहु अशिक्षित लोक,
अनुशासन सँ प्रजन अशेषक नहि संशय नहि शोक।

छट्ठम सर्ग

सभहक चित्त उदार - भावना काजक प्रति उत्साह,
दिन दो-गुन साफल्य हस्तगत, रहत किये दुख.दाह ?
अधिकारक मदमत्त मनुज नहिँ साप जकाँ अछि टेढ़,
नहिँ निज लाभक लेल लगानय अनका हित पर बेढ़।

जाति - पाति केर भेद कतहुनहिँ छूति - छान उच्छिन्न,
सुख सुविधासँ नहिँ क्यो वंचित, नहिँ ककरो मन खिन्न।
सभहक गति - पथ एक, एक स्वर, एक स्वराष्ट्रक प्रेम,
शासित - शासक भेद नामलय एक समस्तक क्षेम।

हिंसक बनल अहिंसक अपनहिँ करत किये अपकर्म ?
पुण्य पथहिसँ जीवन मे अछि नहि ककरा शुभ शर्म ?
सभ प्रबुद्ध, सभ धर्म धुरन्धर, नहिँ क्यो हेय - अहेय,
तेँ अछि द्वारवती भारतमे नहिँ ककरहु सँ जेय।

दोसर पाण्डव लोकनि चलाबथि तदनुरूप निजराज,
जन - प्रतिनिध सभ जेना कहै छनि तेना करै छथि काज।
नित नूतन उत्थान समाजक नित नूतन कल्याण,
परम उदार व्यवस्थासँ अछि जन - मन मुदित महान।

पाण्डव केर प्रतिष्ठा पहुँचल तेँ उड़ि दूर दिगन्त,
राजसूय केँ सफल बनौलक नत - शिर नृप सामन्त।
देश - विदेशक नृप गण देलक तते अधिक उपहार,
शठ दुर्योधन केर जीह सँ टपकय लागल लार।

तेँ सम्प्रति ओ नीच नराधम लागल रचय उकाठ,
'द्यूत द्यूत' दुइ शब्द रटै अछि पढ़ि खल शकुनिक पाठ।

छट्ठम सर्ग

सिखितय ओकर विचार - चारुता देखसी ओकर करैत।
ओकरहि जकाँ प्रशसा एकरो जन-मुख सँ पसरैत।

फलक हेतुएँ ईर्ष्यु बनै अछि वीर पुरुष विद्वान,
दुर्जन किन्तु फलहि मे बाधक बनि करैछ व्यवधान।
भद्र पुरुष आनक गुण - गरिमा केर बनै अछि ईप्सु,
दुर्गण दोषक किन्तु ह्वैत अछि मनुज पातकी लिप्सु।

× × × ×

गण तन्त्रक भवितव्य प्रश्नपर छी हम विदुर, कहैत,
देश दिशा अवलोकि आधुनिक जे अछि बूझि पड़ैत।
पुख - असरेसक बाढ़ि वहै अछि जेना आरि - धुर तोड़ि,
लोकक बाढ़ि बहौलक तहिना तय नियमक जड़ कोड़ि।

अतुल शक्ति - सम्पन्न चक्रधर नहिं अभिमानक छूति,
समदर्शी, नहिँ कतहु चरितमे क्षुद्र स्वारथक पूर्ति।
तेँ छल लोक अनघ बहुतो दिन धैर्य गेल पुनि टूटि,
आँखि बचा सभ गेल तरहितर धन-संग्रहमे जूटि।

सात्त्विक देवतत्त्व जन - हृदयक बड़ संयत बड़ शान्त,
दारुण दानब तत्त्व तमोमय लै अछि कय आक्रान्त।
तुरत चलै अछि स्वार्थक सरिता नैतिक तट कय पार,
मानवीय गुण ग्रामक अछि बहि जाइत खेत-पथार।

छला कहैत स्वयं यदुनन्दन नारद सँ निज आहि,
लागल फेरि अनर्थ: सभमे धन - संग्रह केर हाहि।
मुख्ये जन सभ करत स्वयं जँ निर्धारित - नय - नाश,
जन - साधारण रहत कोना थिर ? करत कोना विश्वास ?

छट्ठम सर्ग

उग्रसेन अक्रूर स्वार्थ-वश मुनिवर, रहथि लड़ैत,
ससुर-जमाइक भाव न कनियो अछि आश्चर्य लगैत।
भेद परस्पर हैत कोना नहिँ, हैत कोना नहिँ फूट,
हम चाही, चाहथि पुनि दूनू हैत कोना दू गूट।

सुनितहुँ गञ्जन-गारि निरर्थक हम अनठौने जाइ,
की प्रतिकार करब नहि कोनो मनमे युक्ति बुझाइ।
शत्रु करै अछि मात्र देह पर अस्त्रक तीव्र प्रहार,
स्वजन प्रहार करैछ हृदय पर बना वाण व्याहार।

कृतवर्मासँ लड़थि सात्यकी दोष परस्पर देथि,
गुटबन्दीमे आब दुहू जन नीक जकाँ रुचि लेथि।
रहत समंजस कोना तन्त्रमे तेँ हम रही विखिन्न,
नहिँ क्यो हमर सहायक नारद, सबहक गति-विधि भिन्न।

बड़का भाइ रहै छथि हलधर सभ सँ बनि अनजान,
राज्यक बनलि रहल दुर्नय पर नहिँ चिन्ता नहिँ ध्यान।
बेटा छथि प्रद्युम्न आलसी रूपक गर्व महान,
नहिँ कनियों सोचथि दिग्देशक हैत कोना कल्याण।

सत्राजितकेँ रहै एकमणि छलै सोन उगिलैत,
अक्रूरक सह पर शतधन्वा तकर प्राण अछि लैत।
तकरा सँ पुन झीटि पड़यला ईप्सित मणि अक्रूर,
म... गेल वृथा शतधन्वा हमर हाथसँ दूर।

धन वैभवसँ भेल जाइ छै लोक ,जते धनवान,
मद्यपानमे चसकल जाइछ, नहिँ काजक दिस ध्यान।

छट्ठम सर्ग

आदर्शक अनुकूल चरित्रक जे छल उपजल चास,
तकरा तोपि रहल अछि उगि उगि घृणित विचारक घास।

मद्यप जन-मन जन्म लैत अछि नित्य अनर्गल चाट,
कर्त्तव्यक सीमा टपि पापक विविध धरै अछि बाट।
द्वारवती मे सैह करै अछि शिखरक लोक उफाँट,
सोचि तकर परिणाम मुनीश्वर, हृदय हमर अछि आँट।

दुर्गुण दोष सकल नृप तन्त्रक जँ अछि एतहु अवैत,
गणतन्त्रक पुनि लोक-दृष्टिमे की अछि मोल रहैत।
राजा लोकनिक दुराचार' लखि चाहल आन उपाय,
चाहल मूर्ति गणेशक लेलहुँ वानर विकट बनाय।

तकरे खोद-बेधमे सन्तत छी हम खिन्न रहैत,
तेँ हम पूछल युक्ति कोनो नव जँ छी अपने दैत।
नारद मुनि बजलाह, चतुर्भुज, की हम देब विचार ?
शक्तिमान छी, करू अपन भरि शासन-यन्त्र सुधार।

अर्थ-पिपासा छीनि सकत से नहिँ अछि कोनो नीति,
पाप-प्रपञ्चक हैत उकन्नन, नहिँ अछि तकर प्रतीति।
अधिकाधिक सुख लेल रहत जँ धन-संग्रहमे छूट,
लोभ-जन्य पापेक शृंखला सभ दिन रहत अटूट।

धन-धरती-संग्रह-सीमा केर जा नहिँ निर्णय लेत,
केहनो नीति समान रूपमे सुख सुविधा की देत ?
जन-संख्या बढ़ि गेल, गेल बाढ़ि सभ बस्तुक महगाइ,
धनसंग्रह पर टूटल अछि तेँ शिखरक लोक कसाइ।

छट्ठम सर्ग

अपने सुख सुविधा पर केवल शिखरक केन्द्रित ध्यान,
से की करत विकल जनताकेर सुखशान्तिक ओरियान ?
भूख पियासक ज्वालामे अछि देशक लोक जरैत,
अपन अचल पद लेल लड़ैये नित नव दल बनबैत।

निर्दय खेन्न तेहन नहिँ एखनहुँ द्वारवतीमे श्याम,
लागल यदपि वसात परञ्च न भेल तेहन उद्दाम।
करू प्रबन्ध अपन भरि सुस्थिर रहय चलय गणराज,
नहिँ तँ अन्तिम असुर-निकन्दन हरण अहाँकेर काज।

कय प्रतिपादित माधवक नारद संग विचार,
सत्यवती नन्दन करथि-अन्तिम उपसंहार।

दुष्ट नृपक दल तते अधिक अछि, तते क्षुब्ध अछि लोक,
भीषण आयुध तते विनिर्मित, नीति तते अछि फोंक।
कोनो नव्य प्रयोग शासनक नहिँ संभव अछि आइ,
देवासुर संग्राम अवश्ये हैत विदुर, दुखदाइ।

तेँ नहिँ होउ अधीर विज्ञवर, नहिँ बेसी अगुताउ,
देवक छनि प्रतिकूल मन्त्रणा मन केँ धीर बनाउ।
करू अपन भरि यत्न जुआरिक चलय न छलमय खेल,
कर्महिमे अधिकार अपन नहिँ होउ व्यग्र फल लेल।

कपट-द्यूत राधा तनय कय सकैत अछि बन्न,
जँ चाहय हित कुरुकुलक सोचथि विदुर विपन्न।

छट्ठम सर्ग समाप्त।

—)०(—

मूर्तिमान विद्वेष सन अछि बैसल रविपुत्र,
छथि पुनि विदुर समक्ष लय मेल-मिलापक सूत्र।
क्रोधक प्रतिमा एक तँ दोसर प्रेम - प्रतीक,
उद्धत एक विनाश तँ दोसर त्राण क्षितीक।

कष्ट किये कयलहुँ विदुर, अहाँ एतय अयबाक ?
कर्णक उक्ति सुनैत ओ कहथि परम हित - वाक।

कर्ण, विश्रुत विश्वमे अँह दानवीर वदान्य छी,
वीरतामे शूर - वीरक मण्डली मे मान्य छी।
परम आस्तिक धर्म - कर्मक नित्य पालन-शील छी,
हैत की पुनि पाण्डु - तनयक लेल जीवन - कील छी ?

अहिँक सनकी दैत रहला पर सुयोधन भ्रान्त अछि,
यदि अहाँ सद्बुद्धि दी तँ भेल लगले शान्त अछि।
वैर - विग्रह मूल द्यूतक योजना नहिँ नीक थिक,
सरल लोकक संग छलमय वञ्चना नहिँ नीक थिक।

वढ़त वैर - विरोध यदि की हैत भीषण युद्धि नहिँ ?
रोकि लेबा लेल क्षम की अछि अहाँ केर बुद्धि नहिँ ?
देश - कोसक संग कुरुकुल - नाश सँ फल हैत की ?
रोकि जँ छी लैत, नहिँ जग सुयश अविकल हैत की ?

रण - विजेता विजित ककरो ह्वैत अछि कल्याण नहिँ,
बुझि सकैछी, कुफल युद्धक, छी अहाँ अज्ञात नहि।
शान्त संयत पाण्डवक प्रति उचित राखब कानि नहिँ,
चलत मैत्रिक बाट पर तँ कौरवक किछु हानि नहिँ।

सातम सर्ग

शान्ति-सौख्यक करब रक्षा बुधक समुचित काज थिक,
युद्ध रचना करब ककरहु लेल अनुचित काज थिक।
कपट द्यूतक अन्ध आग्रह रोकि जँ अँह लैत छी,
विश्व भरि कें कर्ण, निश्चय दान अभयक -दैत छी।

कर्ण :—

विदुर, बाजन एखन अपने नहिँ कोनो अधलाह छी,
अपन हृदय क बहुत मार्मिक व्यक्त कयने आह छी।
सत्य कौरव-बन्धु हमरहि शक्ति पर उधिआइ अछि,
रोकने रुकि जैत, से हो नहिँ असत्य बुझाइ अछि।

किन्तु हृदयक चोट हमरा मन्त्र दोसर दैत अछि,
पाण्डुपुत्रक लेलें दुर्दम द्वेष उर उपजैत अछि।
भेल ककरो दोष सँ हम लोकमे दुर्जात छी,
बिदुर, जगत क मध्य बहुतो सहि चुकल आघात छी।

एखन धरि छल जाहि बातक बुझल ककरहु छाह नहिँ,
कहब हम से, गुप्त राखब, छी अहाँ चुगिलाह नहिँ।
पार्थ तीनू भाइ जकरा गर्भ सँ उत्पन्न अछि,
हमर तकरहि गर्भतल सँ आगमन सम्पन्न अछि।

किन्तु पाण्डव बन्धु सत्कुल-जात जग कहबैत अछि,
सूत अधिरथ-पुत्र हमरा लोक कहि लजबैत अछि।
लैत जे किछु बूझि मानव प्रगट सेह करैत अछि,
करथि जगतक अन्त तनिका धर्मराज कहैत अछि।

जखन कन्या रहथि कुन्ती जन्म देने छथि हमर,
सूर्य सँ सम्पर्क कयलनि, छलनि लोकक लाज डर।

सातम सर्ग

देव-सरिता मे बहा तें देल कोनो स्नेह नहिँ,
त्याग कय मातृत्व देलनि, पातक क सन्देह नहिँ।
भ्रमथि देखथि सूर्य सभदिन किरण पद सभ ठाम छनि
की हुनक पितृत्व ? बेटा नीच जन दुर्नाम छनि।

धन्य अधिरथ बाप बनला धन्य राधा मा हमर,
जनिक पोसल वीर-वंका कौरवक हम पक्षधर।
शस्त्र-शास्त्रक शिक्षणहुँ मे बनल बाधक जाति छल,
गुरुजनहुँ सँ हमर जीवन गर्हित सभ भाँति छल।

अवनिपालक पंक्तिमे नहिँ हमर कोनो स्थान छल,
शक्ति, साहस, बुद्धि रहितहुँ नहिँ हमर संम्मान छल।
धन्य कुरु-कुलवर्य रखलनि मुकुट हमरा माथ पर,
अंग देशक राज्य देलनि सौंखि हमरा हाथ पर।

तनिक अभिमान पूर्ण करबा लेल सदिखन वृत्त छी,
कौरवक हम राज्य-बृद्धिक हेतु अविचल-चित्त छी।
हमर पौरुष अछि पुरस्कृत जाहि कौरव-राज सँ,
तनिक उन्नति लेल तत्पर रहब हम नहिँ व्याज सँ।

पाण्डवक कल्याण हमरा हैत कखनहुँ क्षम्य नहिँ,
रहत जाधरि प्राण, इरखा-द्वेष होयत दम्य नहिँ।
पाण्डवक यदि राज्य लै अछि जीति कौरव द्यूत मे,
शक्ति युद्धक लेल रहतै कोन कुन्तिक पूत मे ?

वनक रस्ता धरत अपनहिँ कय सकै अछि क्रुद्ध की।
दीन-दुर्बल करत गीदड़ सिंह सँ जुटि युद्ध की ?

'श्री अज्ञात'

सातम सर्ग

यदि कदाचित रण रचत तँ तकर हमरा खेद की ?
बाहुबल सँ पाण्डवक हम नहिँ करब उच्छेद की ?
जाति-पातिक रीति हमरा बड़ बनौने क्लिष्ट अछि।
जीवन क नहिँ मोह हमरा आब किछु अवशष्ट अछि।

दैव हमरा देथु अवसर करब कुन्तिक हानि हम
कहब कतवो विदुर, अपने नहिँ सकै छी मानि हम ।
छैक जे किछु ह्वैत हो मय से दिऔ अगुताउ नहिँ,
पाँच[1] जेहने शतक[2] तेहने बिसरि तकरा जाउ नहिँ।

दुहुक उत्तर कर्ण सँ उठला विदुर सुनैत,
क्रम - निवद्ध विधि - योजना चलला हृदय गुनैत।

कुन्ति भोज-घर किये अबै छथि अनाहूत दुर्वासा ?
बिता सकैत छला अन्यत्रहु वृष्टि-बहुल चौमासा ।
सेवा भक्ति निरखि मुनि कुन्तिक किये मन्त्र छथि दैत ?
मन्त्रक द्वारा पृथा किये छथि दिनकर केँ बजबैत ?

देलनि जन्म कोनो विधि गर्भक गुप चुप भोज कुमारी,
लोक रुचि क प्रतिकूल काज सँ लाज रहनि बड़ भारी।
शिशु पेटार मे राखि भसाबथि सुरसरि मे भय - भीत,
कोन प्रेरणा, से अछि होइत अधिरथ कर उपनीत।

जन्मक बुझि इतिहास लोक-कृत तिरस्कार सहि भारी,
चिरचिरहि बनि गेल, भेल तेँ पाण्डु सुतक अपकारी।
हैत तकर फल कुरु-पाण्डवमे विग्रह- वैर बिराट,
केहन बनौने नियति जाइ छथि कुरुकुल-विघटन वाट ?

१-पाँच=पाण्डव पाँच। २-शतक-सौभाइ दुर्योधन।

सातम सर्ग

जातिक दोषहि एक विलक्षण प्रतिभा अछि बौरायल,
क्रोधक वह्नि-शिखामे ज्ञानक दिव्य कुसुम मौलायल।
एहन अनर्थक जड़िमे केवल अशुभ जाति-कृत भेद
तें चाहथि यादव युग-द्रष्टा कृष्ण एकर उच्छेद।

जातिक जड़िमे रहल हैत किछु पूर्व काल-कृत कारण,
हैत रहल किछु छूति-छातमे शुचि-अशुचिक अवधारण।
आजुक युग मे बुद्धि गम्य नहिँ होइत अछि आधार,
एक समान देखै छी सभहक अछि आचार-विचार।

लोकक हित बदलैत रहै छै देश काल-कृत भू पर,
आत्यन्तिक जनहिते धर्म तें देथि नियम बुध दोसर।
युग-युग ठठरी बदलि-बदलि नव नव लय आबथि धर्म,
युग अनुरूप स्वरूपक भेदहुँ जन-हित अविचल मर्म।

अशनक आन उपाय छलै नहिँ हिंस्य छली तें गाय,
बुझितहिँ खेतिक विधि बनि गेली मनुजसमाजक माय।
रहनहिँ पेट भरल, अछि मनमे ककरहु धर्म सुझैत,
विश्वामित्र भूख सँ कुकुरक मांस छला चोरबैत।

भय गेलनि सभ शान्तिक विफल प्रयास,
शून्य समान बुझयलनि उर आकाश।
आब नृपक दिस गेलनि विदुरक ध्यान,
की करैत छथि कुरुपति हा! भगवान।

सातम सर्ग समाप्त

—)०(—

आठम सर्ग

भूपक सुनि संवाद छथि लगले विदुर अबैत,
बड़ प्रसन्न उत्सुक - वदन छथि कुरुराज कहैत।
विदुर, जाउ चढ़ि स्यन्दन, इन्द्र - प्रस्थ,
धर्मराज केँ कहबनि, छथि सभ स्वस्थ,

कुशल अहाँक पुछै छथि प्रिय पितृव्य,
छथि प्रसन्न सुनि उन्नति अनुदिन दिव्य।
बजा रहल छथि पित्ती कुरुकुल राज,
आबथु एतय युद्धिष्ठिर सहित समाज।

सभा भवन पितिऔतक नव लखि लेथु,
सभहक जेठ थिका तेँ आशिष देथु।
छनि वाञ्छित सभभाइक द्यूतक खेल,
तदुपयोगि सभ साधन आनल गेल।

करथु अलंकृत तकरा हमर निदेश,
मिलि - जुलि खेल करथु, पुनि जाथु स्वदेश।
अबरजात सँ होइछ प्रेमक वृद्धि,
प्रेमहि हैत दुहू केर अभिमत सिद्धि।

हमर मनोरथ पूरथु, आबथु पार्थ,
भेट न भेल सुचिर सँ, करथु कृतार्थ।
जाउ त्वरित रथ सज्जित, अछि क्षण नीक,
काज हमर अनुसंशित साध्य अहींक।

चतुर अहाँ छी की पुनि कहब विशेष,
सिद्ध करब निज गमनक विदुर, उदेश।

आठम सर्ग

आज्ञा - पालन करब अहाँ केर भाइ, हमर थिक धर्म,
किन्तु कहै छी, किछु समयोचित, हैत सदा शुभ शर्म।
कपट - जालमे रचल जाइये अपनहुँ दै छी योग,
कुरुवंशक संहार - विधायक थिक सभटा उद्योग।

मिसरी सँ बढ़ि मीठ - मीठ गप कहनिहार नर ढेर,
नहिँ पुनि सुननिहार कम झूठक स्वार्थ - सिद्धिमे भेर।
वक्ता श्रोता दुहू सुदुर्लभ अप्रिय सत्यक भाइ,
ठकुरसोहाती कहब कोना हम अन्तकाल दुखदाइ।

बन्धु विरोधक काज करै अछि दुर्योधन नरनाह,
खेदक बात अहूँ नहिँ तकरा छी बुझैत अधलाह।
विदित विरोधक मूल दुरोदर छल - कपटक व्यापार,
जनितहुँ नलक चरित्र रहै छी तकरे अँह आधार।

सार अहाँ केर द्यूतक प्रतिनिधि शकुनी अछि निर्णीत,
पाण्डु सुतक सभ जीति लेत ओ राजपाट धन-बीत।
संगहिँ पाण्डु पुत्र सभ होयत दास्यभाव उपनीत,
जानि न की सभ करत सुयोधन औचित्यक विपरीत।

पुत्रक लेल अहाँक असीमित सुख - सौविध्यक ध्यान,
संयत शान्त सवल भातिज कैँ किये बुझै छी आन ?
पाण्डु छला नृप, तखन अहाँ केर करथि केहन सम्मान,
हैत तिरस्कृत अपमानित की तनिके सभ सन्तान ?

आज्ञाकारी सदा सत्य - प्रिय धीर - वीर बलवान,
बूझि पितहु सँ श्रेष्ठ अहाँकेर अछि करैत सम्मान।

आठम सर्ग

पुत्रक दुरभिसन्धि सँ प्रेरित उचित तकर की द्रोह ?
आर्यजनक प्रतिकूल कोना उर उपजल मत्सर मोह ?

सरल स्वभावक पाण्डव लोकनिक उकठ कहाँ धरि ठीक,
चसक अहाँ केर देब उकाठिक लेल कहाँ धरि नीक।
बारंबार उपद्रुत पाण्डव अछि रहत की चूप,
अर्जुन भीम सकोप लेत की यमराजक नहिँ रूप ?

अर्जुन तुल्य धनुर्धर के अछि ? भीम - तुल्य बलवान ?
खाण्डब वन के जरासकत ? के लैत वकासुर - प्राण ?
छी हम सोचि कहैत भाइजी, कुरु वंशक हित - हेतु,
रोकु अनर्थक खेल खलक नहिँ तोड़ु स्वधर्मक सेतु।

धूर्त्त शिरोमणि गीदर सभ सँ हैत हरिक की हारि ?
कपटी काक - कदम्ब सकत की चण्ड गरुड़ केँ मारि ?
मुसरी - मूसक वृन्द लड़त की वन - बिलाड़ केर संग ?
हैत पराजित भगजोगनी सँ की नभतलक पतंग ?

अपना सँ बलवान लोक सँ जे बढ़बै अछि वैर,
पर धन - हरणक लेल अपथ पर जे उठबै अछि पैर।
सज्जन सँ मुह मोड़ि करै अछि जे दुर्जन सँ प्रेम,
नीति-निपुण जन कहथि, तकर, नृप, नहिँ अछि भावी क्षेम।

काठक मध्य रहै अछि पावक नहिँ से ककरहु भान,
धधकि उठै अछि शिखावान बनि पड़ितहि रगड़ महान।
ग्राम नगर पुर गुल्म लता तरु भस्म करै अछि जारि,
संघर्षक तेँ करथि काज नहिँ बुध बलगर सँ रारि।

आठम सर्ग

पाण्डुक पाँचो पुत्र सिंह सम वन अहाँक शतपुत्र,
हैत दुहुक सहयोग परस्पर जीवन - रक्षा - सूत्र।
लता - तुल्य अछि पुत्र अहाँ केर तरुसम कुन्तीजात,
युगल - योग अवलोकि स्वबन्धुक हैत प्रफुल्लित गात।
धूआँ दैत रहै अछि चेरा जँ अछि राखल फूट,
धधकि उठै अछि अनायास ओ भेल जहाँ एकजूट।
एकसर बड़को वृक्ष प्रकम्पनमे अछि टूटि खसैत,
संहित वनमे लघु - बड़ कोनो तरु अछि स्वस्थ रहैत।
हिलि - मिलि कमल परस्पर आश्रित अछि प्रसन्न पसरैत,
शोभा सुरभि निहारि प्रफुल्लित अनको मन अछि ह्वैत।
अनुचित लोभ सनातन धारक पतनशील तट भाइ,
धसना धसितहि खसब धारमे ततय अहाँ जुनि जाइ।
दारा, दुर्बल आ देयाद पर जे बनैत अछि शूर,
गाछक पाकल फल सम भैया, तकर पतन नहिँ दूर।
जाति - भाइ जँ द्रोह - दग्ध अछि नहिँ क्यो ककरो मीत,
रिपुक आँखिमे कहू, किये नहिँ ह्वै अछि गम्य प्रतीत ?
पुत्रक कारण झूठ न बजला दनुजाधिप प्रह्लाद,
केशिनीक पति[1] होथि सुधन्वा सभ थम्हि गेल विवाद।
पुत्रक लेल अहूँ केर राजन्, झूठ कहब अधलाह,
दुर्यश हैत जगतमे अन्तिम नारकीय दुख - दाह।

---

१. केशिनी=केशिनी नामक कन्या छलि। जकरा सँ विवाहक लेल प्रह्लाद पुत्र विरोचन आ अंगिरा पुत्र सुधन्वा इच्छुक छलाह। के योग्य छी तकर पंचैती प्रह्लाद कयलनि जे विरोचन सँ योग्य सुधन्वा छथि। अतएव केशिनीक विवाह सुधन्वा सँ भेल।

भेल तुरत कुरुराजक मुह छवि स्याह,
गेल सुखा जनु हर्षक त्वरित प्रवाह।

विदुरक सत्य वचन छल निस्सन चाट,
अन्धतमस मे सूझनि बाट न घाट।

कणिक कहय जनु लगलनि उर समवेत,
विदुरक गप सुनि नृप जुनि होउ अचेत।

कय पुनि साहस हृदयक होस सम्हारि,
उत्तर मे नृप बजला छल अवधारि।

शान्तिक इच्छुक विदुर, अहाँ छी, हमरो अभिमत शान्ति अछि,
खेलक तहमे वैर-विरोधक व्यर्थ अहाँ कें भ्रान्ति अछि।
बेटा-भातिज दून बुझै छी नहिँ बुझैत छी आन हम,
तिरस्कार पुनि करब किये औ? करब किये अपमान हम।

धिया-पुता सभ खेल करैये आनन्दक उद्देशसँ,
झगड़ा-दन जँ करत कदाचित रोकब यत्न-विशेषसँ।
काका भीष्म उपस्थित रहता, रहब अहूँ, रहबैक हम,
कृपाचार्य्य रहताह द्रोणगुरु राखब सभ मिलि शान्ति शम।

नहिँ किछु चिन्ता करक काज छै दूर करू भय-भावना,
देवक इच्छा भिन्न विषय थिक हम धरि दैछी सान्त्वना।
जाउ अहाँ अविलम्ब युधिष्ठिर कें कुरु नगरी लाउ औ,
हमरा मनक मनोरथ कें अहँ सफलीभूत बनाउ औ।

कुरुराजक कथनी छलनि करनी सँ बड़ भिन्न,
रथ चढ़ि चलला, बाट मे सोचथि विदुर विखिन्न।

आठम सर्ग

स्वयं असत्यक दास करथि से अनका सँ पुनि सत्यक आशा,
चलत काज की एक, कहनि जँ सभ मिलि हुनका मिथ्याभाषा ।
एक सत्य पर विश्व चलैये चलल अतीत, भविष्यहु चलते,
नहि तँ फूसिक पथ चलि मानव अपनहिं अपन उकन्नन करते ।
थोड़ दिनुक जीवन ई की बुझि फूसि सत्य, सत फूसि करै छें,
दुःखक सिन्धु डुबै छें आने ठोंठ पकड़ि अनकहु डुबबै छें ?
अपन स्वार्थ-सिद्धिक क्षण सत्यक कंठ मोकि तों आस्तिक मानव,
विपतिक बेरि सत्यमय ईश्वर सुनता तोर कोना कह कानव ?
सत्य थिका नारायण, से बुझि साँझ करै छें पूजा - अर्चा,
सभ किछु मात्र प्रदर्शन, भोरे फूसिक सग्रह फूसिक चर्चा ।
अनुचित काज करत की कखनहुँ जे जन सत्य बजै अछि वाणी,
मिथ्यहि पर अवलम्बित सभटा पाप - प्रपंचक जते कहानी ।
सत्य - प्रवक्ता पापक भयसँ नहिं अपकर्म करै अछि-कखनहुँ,
नर फुसियाह निरन्तर निर्भय पापक बाट धरै अछि कखनहुँ ।
लाभ-लोभ, छल-कपट करत की सत्य जकर अविचल ध्रुवतारा,
दुर्बल मन भय - भीत सत्य सँ दूर जकाँ उड़ि कूल किनारा ।
नहिं बिनु फूसिक काज चलत किछु राजनीति नास्तिक बड़ भारी,
चिक्कन-चुनमुन बकहि जकाँ सभ किन्तु हृदय कोइला सन कारी ।
मिथ्या आधृत मीठ बोल मुह काँखक तरमे कूट - कटारी,
अपन स्वार्थ - साधन मे तत्पर वृत्ति दया - धर्मक संहारी ।
सत्य पुरुष, ई विश्व अहाँ सँ नाता तोड़ि लेत निर्भय की ?
पाप - प्रपंचक अन्धतमी मे आनत ज्योति प्रचण्ड प्रलय की ?

कुरुराजक दुर्बुद्धिपर सोच - विचार करैत,
चिन्तित - चेता छथि विदुर इन्द्रप्रस्थ पहुँचैत ।

आठम सग समाप्त

—)०(—

'श्री अज्ञात'

नवम सर्ग

सभा भवन कृष्णा - सहित पाण्डव जन उपविष्ट,
ताकथि की काका बिदुर कहता बात विशिष्ट ?
हमरे माध्यम सँ अनय अग्रेसर अछि द्वैत,
धर्मराज केँ तेँ विदुर छथि अति खिन्न कहैत ।

बाउ, अहाँ केर कुशल-क्षेम पुछि छथि नृप अन्ध बजौने,
द्यूत - सभा - गृह गेल बनाओल छथि सभ वस्तु सजौने ।
द्यूतक खेला लेल अहाँ केँ कहलनि सत्वर आबथु,
मेल - मिलानक संग खेल मे सक्रिय हाथ बँटाबथु ।

चिर सँ भेट न घाट भेल अछि चर्चा तकर चलौलनि,
गमनागमनहिँ प्रेम बढ़ै छै से पुनि भाव जनौलनि ।
आबथि राजा जेना, करब से, हमरा बहुत बुझौलनि,
बड़ प्रसन्न होयताह गेला सँ अन्तिम ज्ञात करौलनि ।

द्यूतक बात सुनैत छथि द्वैत युधिष्ठिर सन्न,
किछु क्षण रहला मौन पुनि खुजल ओठ-पुट बन्न ।

काका, अपने कहू, एकर के चर्चा प्रथम चलौलक ?
हमरा के प्रतिपक्ष बना ई निश्चय पर पहुँचौलक ?
हमरा संग कहू के पाशा - दोसर व्यक्ति उठौते,
तखनहिँ गमनक प्रश्न नागपुर[1] समाधान पर औते ।

विदुरः—

देलक भरिसक मन्त्र शकुनियाँ जकर बुद्धि अटपटिया,
लेलक मानि सुयोधन मामक मन्त्र मुदित बनि चटिया ।

१—नागपुर=हस्तिनापुर ।

सदा सत्य - प्रिय कहब कोना हम बात कोनो लटपटिया,
दुःशासन कर्णक प्रोत्साहन, सभहक मति - गति घटिया।

बापक अनुमति लेल सुयोधन छल देने पेटकुनियाँ,
देलनि अनुमति अन्ध, मरै जें छलनि परम प्रिय मुनियाँ।
करत अपन अधिकार समर्पित प्रतिनिधि बनत शकुनियाँ,
छल प्रपञ्च मे केहन लोक अछि, सगर जनैये दुनियाँ।

भीमः—

आन्हर आँखि यदपि वक वृद्धक मनक आँखि नहिँ आन्हर,
जाल बिछौलनि तेहन पड़ाइक लेल रहत नहिँ चान्हर[2]।
श्रद्धा - भाजन विदुर कका कें कहि प्रिय बोल पठौलनि,
सरल - बुद्धि मृग औत कोनालग मुरली मीठ बजौलनि।

द्रौपदीः—

जे आजन्म अनिष्ट योजना मे अछि कौरव लागल,
द्यूतक हेतु तकर आमन्त्रण सँ मनमे भय जागल।
हमरा लोकनिक लेल विपत्तिक हम ई न्यौत बुझैछी,
छलमय द्यूत, छली पुनि शकुनी वञ्चक व्योँत बुझैछी।

अर्जुनः—

सुन्दर सुभग लता तरु - मण्डित फलित प्रफुल्लित कानन,
शान्त सुखी निर्वैर मधुप खग हरिण व्याघ्र पञ्चानन।
तकर विनाशक लेल धराधिप द्यूतक आगि लगौता,
हमरा सभके घोर विपत्तिक फँसरी बीच फँसौता।

२ चान्हर=अवकाश, लोक भाषा।

नवम सर्ग

नकुलः—

हमरा लोकनिक सुखमय जीवन नीक बुझा नहिँ पड़लनि,
विभव-हरण करताह तकर नवयुक्ति सभहुँ मिलि गढ़लनि।
जरा न सकला लाहक घर मे कपटक तरु नहिँ फड़लनि,
निःस्व बनौता तेँ पुनि नवका पाठ शकुनिसँ पढ़लनि।

सहदेवः—

बुढ़बा बाघ वनक रस्तालग धर्मक प्रवचन दै छल,
सोनक कङ्ना देत पथिक केँ सादर सोर करै छल।
स्नातक छल सँ फँसा थालमे मुदित करै छल भोजन,
ठीक तकर अनुरूप बनौलनि महाव्याघ्र आयोजन।

युधिष्ठिरः—

नहिँ हम अक्ष - रहस्य जनै छी नहिँ तेँ कतहु खेलाइ,
क्षत्रिय जातिक लेल द्यूत सँ नठबो[1] कष्ट बुझाइ।
छी जनैत इतिहास अतीतक अछि पितिओत कसाइ,
काका, अपने कहू, हस्तिनापुर हम जाइ न जाइ?

विदुरः—

द्यूतक निन्दा करथि विबुध, नहिँ नीक एकर इतिहास,
उचित न द्यूतक थीक चिकीर्षित कृत्यक करब विनाश।
नीक हैत तेँ निज कर्त्तव्यक अपनहिँ करब विचार,
हँऽ नऽ मे पड़ि करब कोना हम औचित्यक संहार?

द्रौपदीः—

क्षत्रिय जातिक लेल गौरवक वस्तु रणक आह्वान,
वीरताक के करत प्रदर्शन क्षत्रवीर विनु आन?

१—नठव= अस्वीकार करब। आहूतो न निवर्त्तेत द्यूतादपि रणादपि।

पतनक कारण द्यूत अनैतिक लोकक पतित विधान,
एहन कर्म सँ नठबे उत्तम सैह हमर अभिधान।

दुर्गत - दीन बनै अछि क्षण मे क्षणमे जीवन निस्स्व,
क्षण मे बूझि पड़ै अछि आँखिक आगु तमोमय विश्व।
अपकर्मक प्रेरक उर लै अछि जन्म अशोभन तत्व,
एहन कर्म केँ देब किये अँह राजा, मान - महत्त्व ?

भीम:—

दुर्योधन केँ हमर सम्पदा लखि उपजल मन क्षोभ,
तकरा हरणक लेल हृदयमे जागल दुर्दम लोभ।
शकुनिक बल पर भूप पठौलनि तेँ द्यूतक संदेश,
हमर बात जँ सुनी अहाँ, जुनि जाउ ततय मनुजेश।

महाराज, जुनि जाउ, कहै छी, करू निमन्त्रण त्याग,
की बुझि जायब, जखन उठौने फण अछि निष्ठुर नाग।
आमन्त्रण जँ रहितय युद्धक जैतहुँ तखन सहर्ष,
द्यूत कर्म मे कोन वीरता ? कहू कोन उत्कर्ष ?

अर्जुन:—

युद्ध जकाँ द्यूतक आमन्त्रण अनुष्ठेय नहिँ थीक,
गर्व - गुमानक बस्तु द्यूत केँ मानव नहिँ नृप नीक।
एहन प्रथाक चलन ज्ञानी जन छथि कहैत नहिँ नीक,
जानि - बूझि हम लेब किये शिर विग्रह वैर व्यलीक।

शौर्यक पूजक हम सभ रहलहुँ कूट - कपट सँ दूर,
मरा लोकनिक हृदय सनातन सरल - भाव सँ पूर।

नवम सर्ग

विश्व विदित अछि द्यूतक लीला छल कपटक व्यापार,
महाराज, तें करब कोना अँह आमन्त्रण स्वीकार ?

नकुलः—

लेता हरि सर्वस्व, लाज नहिं प्रेमक बात बजैत,
पकड़ि जीवकें गोहिक दृग सें अछि जलधार बहैत।
लाहक घर मे आगि लगा जे रहथि वृद्ध जरबैत,
"तनिका सँ रह दूर बाउ रे" अछि इतिहास कहैत।

सहदेवः—

आरम्भहिँ सँ अन्धधराधिप रहला जखन ठकैत,
धन-सर्बस्व हरण करबालय एखनहुँ छथि बजबैत।
तखन किये नृप जायब छलमय द्यूतक सुनि सन्देश ?
मेल-मिलानक कोन योग्यता रहल शत्रुसङ शेष ?

युग युग किछु ने किछु समाज मे अधला चलन चलैये,
तकर मूल मे पहिने कोनो हितकर हेतु रहैये।
युगक बदलितहि से पुनि लोकक लेल अहितकर ह्वैछ,
वीर-हृदय विद्वाने तकरा जड़ि सँ काटि फेंकैछ।

युधिष्ठिरः—

स्निग्ध सङहि विष-दिग्ध निमन्त्रण हमहूँ बूझि रहल छी,
जाइ न जाइ तकर चिन्ता मे आतुर जूझि रहल छी।
ककरो द्यूतक लेल निमंत्रण, राजपुत्र जन जानि,
नठि न सकैये, रुकि न सकये जकरा मनमे आनि।

नवम सर्ग

युद्धक तुल्य निमन्त्रण द्यूतक क्षत्रिय जाति मनै अछि,
नहिँ स्वीकार करब निज गौरव-हननक वस्तु जनै अछि।
सोचि अमंगल-मूल दुरोदर जँ अछि दैत नकारि,
लय जाइत अछि उड़ा कीर्ति-यश जन-मुख-वचन-विहारि।

बाप जकाँ अति माननीय हम सभ दिन जनिका बुझलहुँ,
पालन-पोषण जनिक छाहतर पावि कोनो विधि बढ़लहुँ।
तनिक निदेशक आइ अपालन धर्म-विरुद्ध बुझै छी,
धर्मक आगु महत्त्व न कहियो अर्थ-काम केर दै छी।

आज्ञा-पालन पुत्र पिताकेर जँ नहिँ प्रणत करैये,
एहि सँ बढ़ि चढ़ि कोन अनर्गल काज जगत मे ह्वैये ?
गमन करब अतएब हस्तिनापुर हम संग समाजक,
अपना दिस नहिँ ताकि, मनोरथ पूर्ण करब महराजक।

अपन केहन कर्त्तव्य कर्म से बूझि करै छथि ज्ञानी,
आन करत की ताहि बात दिस ध्यान न दै छथि ज्ञानी।
अपन धर्म बुझि गमन करब हम, धर्म धरित्रिक जीवन,
की करताह पिता ओ जानथु, से अछि हमर अधीन न।

रक्षित धर्म सुरक्षित राखब, उर अवधारि चलै छी,
कुल-रीतिक प्रतिकूल कोना हम सुयश-विनाशक ह्वै छी।
धर्मक रक्षा लेल भेल जे छथि अवतीर्ण खरारी,
मंगल करथु हमर मंगलमय चक्र-सुदर्शन-धारी।

नवम सर्ग

बड़ आतङ्कित पाण्डुक कुल परिवार,
बदलि सकल नहिँ नृपतिक गमन - विचार।

अति दुर्वार नियति अछि विवश करैत,
तदनुकूल तेँ निर्णय नर अछि लैत।

बड़का भाइक निर्णय अविचल जानि,
की करताह अनुज जन लेलनि मानि।

जनिक न कयलनि कहियो किछु विपरीत
आइ नकारथु कोना सहज सुविनीत।

अछि अबैत जनु कोनो विकट बिहारि,
सकथि न कृष्णा मन सँ भय केँ टारि।

विदुर जनै छथि गमनक फल अधलाह,
दौत्य - धर्म सँ बान्हल की बजताह ?

नवम सर्ग समाप्त

—)०(—

दशम सर्ग

कुरुराजक चमकैत सभा भवन लागय केहन ?
शुभ्र-शाभ्र विहुँसैत वक पंखी खलजन जेहन।
द्यूतक सभ सामान दृश्य सभा मे ह्वैत अछि,
कुरु वंशक अवसान रहितहुँ मौन, कहैत अछि।

एक भाग उपविष्ठ छथि सानुज पाण्डव प्रथम,
भागिनेय जन - निष्ट दोसर दिस गान्धार[1] अछि।
हित मित नृपति-समाज वृत्त बना उपविष्ट छै,
छथि बैसल कुरुराज भीष्म-द्रोण विदुरादिसङ।

द्यूतक कय उद्घोष भेल प्रपञ्चित खेल पुनि,
कतहु जयक सन्तोष कतहु हारि अनिवार्य सन।
सन्तत शकुनिक जीत हारि निरन्तर पाण्डवक,
भेलनि अनय प्रतीत विदुर कहथि कुरुराज सँ।

महाराज, भल सोचि अहाँ केर किछु हम कहब विनीत,
जे किछु कहब कदापि हैत नहिँ कल्याणक विपरीत।
यद्यपि हमर कथा अपने केँ बूझि पड़ै अछि तीत,
कहब तथापि विनाशक धंधा ह्वै अछि हृदय प्रतीत।

अपने सँ भेटल अछि हमरा मन्त्रित्वक अधिकार,
सकट काल एखन बिनु पुछनहुँ दै छी स्वच्छ विचार।
नहिँ सोचल अधलाह धराधिप, स्वप्नहुँ मे अपनेक,
एखनहुँ सैह कहै छी, अग्रिम जे शुभ देत अनेक।

द्यूतक द्वारा किये अहाँ किछु पाण्डव सँ धन लेब,
कहियो, अपनहिँ देत, अहाँ सँ नहिँ क्यो चलत उरेब।

1—गान्धार—गन्धारवासी शकुनि।

दशम सर्ग

हैत तखन नहिँ वैर-विरोधक अपना मे उद्‌भूति,
चाहब जखन जते जे अर्जित, घर अछि ओकर विभूति।

पक्षी एक छलै ककरहु घर रहै सोन उगिलैत,
दिन दोगुन ओकरा घर मे छल धन-सम्पत्ति बढ़ैत।
एकर पेट मे सोन बहुत छै तेँ देलक ओ मारि,
तकरे परि लोभान्ध अहाँ छी अपन महाहित हारि।

उपवन सँ फल-फूल पबै अछि माली सींचि सयत्न,
स्नेह-सिक्त पाण्डव सभ तहिना देत धरा-धन-रत्न।
स्वर्णष्ठीवी विहग-निहन्ता जकाँ करू जुनि काज,
आगत संग अनागत केँ नहिँ दूरि करू महराज।

लुब्ध वनेचर मधुक लोभसँ तरुक शिखरु पर गेल,
टूटल डारि खसल थकुचा भय अतिथि परेतक भेल।
द्यूतक खेल करै अछि तहिना बेटा एखन अहाँक,
रोकू जानि अशुभ नृप, सत्वर मानि हमर हितवाक।

कहिऔ एकरा रे दुर्योधन तुरत बन्न कर खेल,
दुराधर्ष बनि रहवेँ पामर कय पाण्डव सँ मेल।
जँ नहिँ मानय बात दिऔ अँह अर्जुन केँ आदेश,
बंदी लेत बना ओ एकरा नहिँ संशय लवलेश।

सगरक सुत असमंजस ओकर काज छलै उत्पात,
देश-बहिष्कृत कयलनि राजा कय मन-ममता कात।
कंसक कारण देश दुखी छल, दै छल सभकेँ कष्ट,
उग्रसेन नृपतिक इंगित पर कयलनि कृष्ण विनष्ट।

दशम सर्ग

एक मनुष्यक त्याग करथि बुध कुल-कल्याणक लेल,
गामक हित मे कुल केँ त्यागथि यदि उत्पथ चढ़ि गेल।
जनपद केर हितक रक्षा मे त्याग करथि बुध गाम
त्यागथि धरनी जँ अछि ईप्सित उच्च परात्पर धाम।

दुर्मति - मानव बना लैत अछि अपनो लोक विरान,
स्वार्थें अन्ध बुझै अछि दुर्जन नहिँ अप्पन नहिँ आन।
लाबा-दूध पिऔनहुँ नहिँ अछि अहि ककरो हित ह्वैत,
अपन अपत्यहु केँ अछि निष्ठुर चढ़ा लोल पर लैत

हरासंख दुर्योधन निश्चय दुखदायक थिक मूस,
द्यूत - दन्त सँ कुरुवंशक जड़ि कोड़ि करत भरकूस।
नहिँ कुरुवंशक टा ई दुर्दुट देशक करत विनाश,
क्रन्दन मे परिवर्त्तित भय ई औत अहाँ केर हास।

अहाँ हर्ष सँ फूलि उठै छी सुनि सुनि शकुनिक जीति,
लक्ष्य - सिद्धि बुझि उमड़ि उठै अछि मनमे अद्‌भुत प्रीति।
विष वृक्षक कय वपन सुधा केर अहाँ करै छी आस,
मकड़ा जाल बनावय अपने करबा लेल विनाश।
पाशा एक चलै अछि से पुनि शर बनि औत अनन्त,
युद्धक मध्य वहौत एक दिन रक्तक धार दुरन्त।
राखथु से दिन दूर दिगम्बर, तकरा ध्यान रखैत,
रोकू खेल अनर्थक जड़ि थिक, हम छी बूझि कहैत।

नहिँ किछु नृप बजलाह,
दुर्योधन केँ गेल लहि।
क्रोधक लेल तवाह,
लगले बाजि उठैत अछि।

'श्री अज्ञात'

विदुर, अहाँ जीवन भरि निन्दा रहलहुँ हमर करैत,
जीवन हमर अहाँक दृष्टिमे सभ दिन रहल गड़ैत।
नहिँ वश चलल, जनमितहिँ हमरा छलहुँ अहाँ मरबैत,
उठा सकै अछि के नर जकरा छथि भगवान रखैत ?

एखनहुँ तहिना हमरा पर छी थाल अहाँ उझिलैत,
ककरहु उत्कट कथा अहाँकेर नहिँ छै नीक लगैत।
पुछलनि नृप नहिँ, हम पुछलहुँ नहि, नहिँ क्यो पुछलक आन,,
अप्रिय बोल बजैत किये छी फूटल ढोल - समान ?

पहिनहिँ सँ छी पाण्डव लोकनिक हित - साधन मे तूल,
रहलहुँ तहिना अहाँ कौरवक नित्य बनल प्रतिकूल।
हमरा लोकनिक लेल पहिरना महक थिकहुँ अँह साप,
राजा सरल मतिक छथि तेँ नहिँ गनथि अहाँ केर पाप।

धर्म पुरस्सर खेल चलैये, हमर ह्वैत अछि जीत,
ककरो लखि उत्थान अहाँ केँ किये लगै अछि तीत।
केहन अहाँ केर हृदय स्याह से प्रगट करै अछि बोल
बुझलक लोक, रहू चुप आबहुँ हैत दुखायल लोल।

विदुरः—

रहलनि रुद्ध जखन मुह नृपतिक की बाजब पुनि आब,
बुझले अछि, छौ तोर हृदय मे केहन अनर्गल भाव।
फूटल ढोलक कथन नृपहु केँ लगलनि एखन अनोन,
एक एक पद वाक्य समरमे पड़तहु सभ केँ मोन।

खेल चलल पुनि ह्वैत अछि शकुनिक सन्तत जीत
हारि गेला पाण्डव अपन राज - पाट धन वीत।
राज पाट धन वीत हारि नृप निर्धन भेला,
अनुज चारि कें हारि स्वयं नृप हारल गेला,
राखि सकैछी अहाँ दावपर द्रुपद कुमारी,
धूर्त्त शकुनि अछि दैत युधिष्ठिर कें टिटकारी।

कि कर्त्तव्य - विमूढ़ नृप दै छथि हुनकहु हारि,
दुर्योधन उन्मद - हृदय हर्ष न सकल सम्हारि।
हर्ष न सकल सम्हारि कहै अछि निज किंकर सँ,
पाञ्चाली कें पकड़ि आन तों सत्वर घर सँ,
अन्तःपुर ओ गेल जतय पाञ्चाल कुमारी,
अछि कहैत खल परुष वचन वायस अनुकारी।

चलू हमर सङ द्रुपद कुमारी दुर्योधन बजबैत छथि,
अन्त अहूँ कें राखि दाव पर हारि युधिष्ठिर दैत छथि।
रहलहुँ रानी आब अहाँ नहिँ नौड़ी कौरव केर छी,
उठू चलू अविलम्ब अहाँ की व्यर्थ करैत अबेर छी?

भेलहुँ दासी अहाँ कौरवक हारलि गेलहुँ भेल भल,
मूर्ख पाण्डवक संग अहाँ केर जीवन नहियें नीक छल।
के अछि दोसर एहन लोक जे बहु कें हारि सकैत अछि,
मान प्रतिष्ठा मिला माटि मे हास्यक पात्र बनैत अछि।

राज पाट धन धाम हारलनि पूर्ण अकिञ्चन भेल छथि,
हारि अनुज चारू कें अपनहुँ हारि दाव चढ़ि गेल छथि।

दशम सर्ग

तकरा बाद अहूँ के राजा चढ़ा दाव पर हारलनि,
की अधला की नीक कनेको मनमे कहाँ विचारलनि।

द्रौपदी :—

मासिक रुधिर स्राव सँ पीड़ित एखन कोना हम जाइ छी,
एक वसन तन धारण कय हम जायब कोना, लजाइ छी।
हारल अपनहिँ छला तखन की हमरा हारि सकैत छथि ?
दास स्वयं बनि हमरा पर पुनि की अधिकार रखैत छथि ?

पुछिअनु जाकय सभ्य सुधी जँ समाधान की दैत छथि ?
दासीपन स्वीकार करब जँ हारब सिद्ध करैत छथि।
एहन अवस्था मे हम कोना राज सभा मे जाइ छी ?
टहल - टिकोरा करब घरहि मे जँ हम विजित बुझाइ छी।

भृत्यक मुख सँ प्रश्न सुनि द्रौपदीक तत्काल
अछि कहैत कुरुकुल कुचर बना अक्षि युग लाल।

आबि सभा मे करौ द्रौपदी निज प्रश्नक उद्भावना,
तखनहिँ कोनो कय सकैत अछि ककरो उत्तर कामना।
एक वसन छ वा नाङटि अछि तैं सँ हमरा काज की ?
आबय पड़तै तुरत सभा मे नौड़ी केँ छै लाज की ?
एकरा सँ नहिँ हैत दुशासन स्वयं अहाँ चल जाउ ओं
अन्तः पुर मे जतय जेना हो झोंट पकड़ि झट लाउ औ।

प्रेतपतिक किंकर जकाँ पहुँचल दरबर दैत,
द्रुपद कुमारी केँ निरखि अछि खल गरजि कहैत।

ककरा बल पर हेगय द्रौपदी तोर एहन अभिमान छौ,
चलय कहलकौ नहिँ तो गेले आब न तोहर त्राण छौ।
कौरव कुलक थिके तो नौड़ी तखनहुँ तोँ अगराइ छेँ,
झोँट पकड़ि लय चलबौ पापिनि, कतय पड़ायलि जाइ छेँ।

झोँट पकड़ि लेलक ललकि दुःशासन उधिऐल,
घिसिऔने निर्दय जकाँ सभा मध्य चल ऐल।
जेठ कहै अछि छोट के कौरव कुलक कलंक,
वसन घीचि एकरा अहाँ नग्न करू निश्शक।
आँचर खल लेलक पकड़ि अपनहुँ छथि पकड़ैत,
ताकि सभा दिस द्रौपदी छथि पुनि कानि कहैत।

सभ्य सुधी जन हमर प्रणाम, खलक हाथ पड़ि व्याकुल वाम,
सादर प्रश्न करै अछि एक, उत्तर सदय देब सविवेक।
हारल पार्थ रहथि स्वयमेव, की नहिँ हारब हमर उरेब ?
निर्णय देथु सदय मतिमान, सक्रिय करब तकर सम्मान।

जे अछि दासी तकरहु लेल, उचित एहन की निर्दय खेल।
सभा मध्य अछि नग्न करैत, की अछि सभके नीक लगैत ?
रुधिर स्राव सँ पीड़ित प्राण, परमित वसना अशुचिमहान।
झोंट पकड़ि हम आनल जाइ, नग्न करैये क्रूर कसाइ।
नारी जनक एहन अपमान, देखि रहल छी सभ सज्ञान।
लाजक विषय सभ्यहु क लेल, अछि मानवता की मरि गेल ?

ग्रस्त हनुग्रह[1] सँ जेना सभाभरिक मुह बन्द,
काठक निर्मित लोक जनु अछि बैसल निष्पन्द।

१—हनुग्रह=एक मुखक रोग जाहि मे वाजल नहिँ होइत छैक।

दशम सर्ग

देखि अनर्गल दृश्य अछि बदलि गेल मुखवर्ण,
खिन्न-हृदय लागल कहय उठि तत्काल त्रिकर्ण।

बाबा गुरु सोदर सुनथु, सुनथु सभ्य समुदाय।
छी कहैत दुखदग्ध हम मौन रहल नहिँ जाय।
राज सभा केर मध्य मे कुल वनिता कें आनि,
नग्न करथि अग्रज हमर लाज बीज नहिँ ग्लानि।

छी हम बाँटल किन्तु नहिँ अछि बाँटल सम्बन्ध,
दूरि करथि तकरा तखन आँखि अछैतहुँ अन्ध।
कोन धर्म थिक, कोन तप, कोन उजागर कृत्य ?
कहथु सभ्यजन, उचित की एहन अशोभन नृत्य ?

दुर्दम दानव जातियो करत एहन की काज ?
केहनो उद्धत कें एना करय दैत नहिँ लाज।
मोकि रहल छै छोड़ि भय धर्मक गरदनि पाप,
प्रलय अनै पर अछि तुलल जनु कोनो अभिशाप।

नारी जन-आदर जतय, जतय मान संमान,
सुख समृद्धि संचय ततय, ततय नित्य कल्याण।
नीच नराधम जन जतय करय तकर अपमान,
फूटल तकर कपार छै कहथि कृती मतिमान।

हारल अपने नहिँ रहथि जाधरि धर्म-कुमार,
द्रुपद कुमारी पर छलनि तखनहिँ धरि अधिकार।
दास धर्म सँ भेल छनि क्षत्रत्वक अपहार,
भय सकैत छथि नहिँ तखन नारिक हारनिहार।

दसम सर्ग

पाँचो भाइक द्रौपदी सकथि एक नहिँ हारि,
ताहू मे हारल स्वयं, के नहिँ देत नकारि ?
द्रुपद कुमारी मुक्त छथि, कहय मनुष्यक धर्म,
चीर-हरण पशुताक थिक महा अनैतिक कर्म ।

शकुनि द्रौपदिक चर्च कय देथि जखन सनकाय,
तखन युधिष्ठिर दैत छथि हिनकहु दाव चढ़ाय ।
धूर्त्त जुआरी ह्वैत अछि स्वयं चरित्रक भ्रष्ट,
परक प्रतिष्ठा की बुझत जे अछि अपनहिँ नष्ट ।

जकर चेतना सुप्त अछि जकर लुप्त अछि ज्ञान,
सैह करत लीला एहन मूढ़-हृदय पाषाण ।
लाजेँ लाज लजाइये सभतरि विषम विषाद,
अनयक सीमा गेल टपि उच्छृँखल उन्माद ।

हारलि छथि की नहिँ तकर प्रश्न रहौ ता कात,
नारी केँ विवसन करब की न अनर्थक बात ?
छी सभ बैसल मौन भय नहिँ छी उचित बजैत,
नहिँ बजने हे आर्यजन, नहिँ अछि पाप लगैत ?

जन साधारण केँ तमी मे जनु प्राप्त प्रकाश,
लागल हर्ष-ध्वनि करय राजकुलक तजि त्रास ।
कुत्सित कर्मक प्रति मने छल सभ लोक विरुद्ध,
पक्षपात-मूर्च्छित-हृदय कर्ण कहै अछि क्रुद्ध ।

शान्त रहथु सभ सभ्यजन शान्त रहथु जन आन,
बाल विकर्णक बातपर देब उचित नहिँ ध्यान ।

दसम सर्ग

बालक बहकि बजैत अछि वृद्ध जकाँ यदि बोल,
विज्ञ विचारी लोक लग तकर ह्वैछ नहि मोल ?

कोकिल कुल अछि मौन मुख जनितहुँ गीतक तत्त्व,
काक क काका कें किये क्यो छथि दैत महत्त्व ?
बड़बड़ बैसल विज्ञजन विजित बूझि छथि चूप,
बूझि सकै अछि अज्ञ की धर्मक सूक्ष्म स्वरूप ?

हौ निर्कर्ण, भय कुरु कुलक सन्तति, दै छह गारि,
बैसल छह सुख सँ जतय सैह कटै छह डारि।
अनल प्रगट भय काठ सँ तकरहि करय सुड़ाह,
प्रगटि देह सँ रोग अछि दैत असह दुख दाह।

टिटही चित्त सुतैत अछि अपन उठौने टाङ,
रोकि लेब जँ नभ खसत बचालेब हम आङ।
करय तराजुक बटिखड़ा अपनहिँ अपन बड़ाइ,
शालिग्रामक हम थिकहुँ वन्दनीय बड़ भाइ।

नरक अधीन रहैत अछि धन पशु पत्नी मेह,
हारि गेल छथि से स्वयं रहल कोन सन्देह ?
हारि सकैछथि भाइ कें जँ बुझि अपन अधीन,
सभहक साझी नारिकें हारि सकै छथि की न ?

कुल वनिता सन चालि नहिँ अछि व्यभिचार करैत,
नहिँ ई एक अनेक कें अपन देह अछि दैत।
वारवधू केर अंग तँ क्यो अछि देखि सकैत,
तों अशिष्ट निर्लज्ज छह सभ कें गारि पढ़ैत।

दशम सर्ग

आधिरथिक फटकार चुप्पे रहल विकर्ण मुनि,
मनमे करय विचार द्वेषक आगु विवेक की ?

वञ्चक वगुला सभक सभा मे ह्वै अछि हंसक हासे
ह्वै अछि पाप प्रपञ्चक लग मे निर्मल नीति निरासे।
ईष्या द्वेषक बह्नि शिखा मे लाज जेना थिक घासे,
आशा की उपजाक ? जखन अछि बभनिक मारल चासे।

सूगा सीमर सेबि क्षुधा नहिँ कहियो मेटि सकैये,
चाखि गरल नहिँ काल भुजंगक जीवन भेटि सकैये।
अधिरथ पुत्रक बाहुक तरमे अग्रज त्राण तकै छथि,
दशमिक छागर हरियर घासक नव उद्यान तकै छथि।

पक्ष समर्थक युक्ति कहैलय चोरो ताकि अनैये,
हृदयक लगमे युक्ति बुलन्तो की नहिँ नग्न बनैये ?
अशुभ विचारक हाथेँ पापी बेचि हृदय निज लैये,
बाँसे नहिँ तँ कोना बाँसुरिक स्वर सुखदाय सुनैये ?
सत्य कथा केँ नीच नराधम सम्प्रति गारि कहैये,
देव लोक मे चर्द्दरि केँ सुर वृन्द कोदारि कहैये।

संयत सरल विकर्ण केँ रविनन्दन फटकारि,
पाञ्चाली दिस ताकि पुनि उद्धत दै अछि गारि।

द्रुपदक बेटी, सुनह तोँ जे हम छिअहु कहैत,
हमर कथा कय कष्ट सँ तोँ छह उबरि सकैत।
दुर्योधन केँ तोँ तुरत लेबह जँ वर मानि,
जीवन भरि रहबह बनलि कुरुवंशक महरानि।

दशम सर्ग

उच्छृँखल उद्धत - हृदय दुर्योधन हत - शील,
गुरुवर्गक रहितहुँ, कथा अछि कहैत अश्लील।

विकल बनौने छले̐ द्रौपदी मनमन्दिर मे पैसि,
दे मुखचुम्बन हेगय हमर तोँ वाम जाँघपर बैसि।
पाण्डव लोकनिक कोन त्रास छौ हमर बनल सभ दास,
रति - सुख दायक शरण आब छौ एक हमर भुजपाश।

भाषा सुनि दुर्योधनक बिगड़ि भीम उठलाह,
काल जकाँ सहदेव सँ रक्त - नयन बजलाह।

दे सहदेव, गदा हम एखनहिँ देब एकर मुहतोड़ि,
जँ किछु बाजत सूत पुत्र तँ तकर देब शिर फोड़ि।
कालक करब प्रतीक्षा की हम सहब कोना अपमान,
यमलोकक पथ धरौ आइये धृतराष्ट्रक सन्तान।

हाँ हाँ शब्द करैत धर्मराज उठलाह की
भीम दिशा बदलैत हाथ हुनक लेलनि पकाड़।

लाबह आगि तुरन्त कतहु सँ धधकाबह सहदेव,
हिनक आगि मे आइ दुहूटा जरा हाथ हम देब।
कानि रहल छथि द्रुपद कुमारी आश्रय - हीन अनाथ,
एहन अनर्गल काजक सिरजनिहार हिनक ई हाथ।

छलिअनि राज्यक संग हमहुँ सभ चारू भाइ अधीन,
तकरा हारि गेलछथि तँ अछि नहिँ मन तनिक मलीन।
द्रुपद सुता केँ कोना दाव पर रखलनि ज्ञान गमाय,
तेँ हम देबनि हिनकर एखने निश्चय हाथ जराय।

Scanned by CamScanner

दशम सर्ग

देखल बहुत जुआरिक घर मे हीन चरित्रो नारि,
तकरा दाव चढ़ा ओ कखनहुँ नहिँ सकैत अछि हारि।
द्रौपदीक सन रमणि-रत्न केँ देलनि दाव चढ़ाय,
तकरे फल ई भरल सभा में छथि कनैत असहाय।

भीमक क्रोध प्रचण्ड लखि अर्जुन चट उठलाह,
प्रेम-पुरस्सर हाथ धय सान्त्व वचन बजलाह।

बाजल निष्ठुर वचन न कहियो छलहुँ वृकोदर भाइ,
शिष्टताक पुनि किये अतिक्रम करब क्रोध सँ आइ?
पूजनीय छथि, करथु धर्म बुझि जे किछु ई करताह,
दुख सँ विचलित-चित्त बुझै छी किये अहाँ अधलाह?

एहने लोक बनबितथि सभटा जँ जग-सिरजनिहार,
ककरहु संग किये क्यो करितय छलकपटक व्यवहार?
तखन ह्वैत की झगड़ा झँझट पाप प्रपञ्चक काज?
स्वर्ग सुखक अनुभव सभ करितय मिलिजुलि मनुज-समाज।

द्रौपदीक क्रन्दन कुरु-नारी केँ भरि जन्म कनाओत,
दुष्टताक परिणाम भयंकर दुष्टहि लग घुरि आओत।
कुटिल आसुरी वृत्ति निरङ्कुश जे किछु कर्म करै अछि,
अपन बिनाशक लेल स्वयं से रंगमंच बनबै अछि।

अग्निक तिग्म ताप मे तपितपि चमकि उठै अछि सोन,
तखनहिँ तकर महत्त्व आँकै अछि धरतिक चारू कोन।
रहत जाल मे बहुत काल नहिँ बाझि हमर सामर्थ्य,
भोरक अन्धकुहेस माझ दिन स्वयं ह्वैत अछि व्यर्थ।

दशम सर्ग

धर्मक पथ सँ हटत डेग नहिँ, नहि बाजब दुर्वाक,
सभ्यताक नहिँ करब हनन, नहिँ सृष्टि करब झगड़ाक।
हैत जहाँधरि पित्तिक हम सभ कय सकवनि संमान,
ता नहिँ अस्त्र उठायब जा नहिँ बाध्य करत अभिमान।

मधुर सत्य सात्विक वचन होथि भीम सुनि शान्त,
दीप्त दिनेशक सम वदन क्रमहिँ कलाधर - कान्त।

द्रुपद कुमारिक प्रश्न पर नहिँ क्यो रहथि बजैत,
स्वयं सुयोधन उठि तखन अछि उद्घोष करैत।

कहथु पाण्डव लोकनि अपनहिँ करथु निर्णय तथ्य की ?
गेलि हारलि द्रौपदी की नहिँ, कहथु छनि कथ्य की ?
नहिँ बजै अछि आन क्यो किछु पाण्डवो बजताह नहिँ,
करब हम जे फुरत, क्यो पुनि होथु व्यर्थ तवाह नहिँ।

जखन युधिष्ठिर नहिँ अपन कयलनि प्रगट विचार,
कहथि द्रौपदी भीष्म सँ बहा अश्रु-जल-धार।

पूज्य पितामह, किये मौन छी नहिँ कय किछु अनुशासन ?
भरल सभा मे घीचि रहल अछि वस्त्र हमर दुश्शासन।
नग्न करै पर अछि शठ उद्यत नहिँ की हेतु हुँटै छी ?
तुलना - हीन अनीतिक चुपरहि सभहुँ समर्थन दैछी।

बड़ बड़ शूरवीर छी बैसल बड़ बड़ पुरुष प्रतापी,
मानवता क हनन कय कोना बरसि रहल अछि पापी ?
त्राहि त्राहि आक्रन्द करै अछि निःसहाय कुलवाला,
सभहक बुद्धि विवेक शौर्य पर की कछि लागल ताला ?

दशम सर्ग

कुत्सित कर्म एहन की सुनलहुँ कहियो असुर जनहुँ मे ?
एहन विचार उठल की कहियो केहनो मूढ़ मनहुँ मे ?
मान प्रतिष्ठा गमा हमर छथि बौक बनल पतिपंचक,
उन्मद सिंह सियार बनौलक इन्द्रजाल रचि वंचक ।

जे सभ दिन कुरु-कुलक द्रोह सँ भाग्यहि प्राण बचौलनि,
की बुझि पाण्डव तकर कपट पुनि सकलीभूत बनौलनि ?
हारथु द्यूतक कपट जाल मे प्रथम पार्थ धन धरणी,
विनु सम्मति की हारि सकै छथि जड़ पशु धन सम घरनी ?

बुद्धि - ज्ञान मे, विषय - बोध मे नारी नरक समाने,
जड़ सम्पत्ति जकाँ यदि बूझथि पुरुष तकर की माने ?
कोनो कर्म शुभाशुभ मे अछि सभ स्वतन्त्र नर - नारी,
फल भोगक क्षण कहाँ द्वैत अछि क्यो ककरो अधिकारी ?

सहज बुद्धि सँ कर्म जेहन जे मनुसन्तान करैये,
सुख - दुख, हानिलाभ, यश - अपयश अनुगुण तकर पबये ।
नर नारिक सहयोग वस्तुतः सृष्टिक हेतु बनैये,
तेँ दूनुक अर्द्धाङ्ग कल्पना भारत भूमि करैये ।

कल्पित विषय कल्पिते, तकरा के ध्रुव सत्य कहैये ?
रिष्ट - पुष्ट, नीरोग एक तँ दोसर रुग्ण रहैये ।
वैवाहिक सम्बन्ध दम्पती सख्य भाव सम्पादक,
कोनो कृति मे भय सकैत अछि सहमतिये निष्पादक ।

जँ अधिकार पतिक पत्नी पर जा सकैछ अवधारल,
हारल अपनहिँ हारि सकथि की कृपया जाय विचारल ।

दशम सर्ग

छी सभ बैसल धाड़ खसौने नहिँ किछु किये बजैछी ?
मौन साधि की रहब उचित थिक ? व्याकुल प्राण पुछै छी।

भीष्मः—

मर्माहत छी, व्यथित - हृदय छी जिवितहुँ मृत छी बेटी,
सर्वजयी रहितहुँ हम विधिसँ आइ विजित छी बेटी।
के हम थिकहुँ, कतय छी बैसल, की हम देखि रहल छी,
दिन की राति, पूव की पच्छिम नहिँ किछु पेखि रहल छी।

आजीवन हम रहि कुमार व्रत - ब्रह्मचर्य अपनौलहुँ,
राज, पाट, धन - धाम विचारक आगु नगण्य बनौलहुँ।
हम कुरुकुलक निमित्त अपन भरि आलोकित पथ देलहुँ,
सन्तानक पुनि तिमिर प्रेम लखि बौक जेना बनि गेलहुँ।

की छल अपन मनोरथ मनमे ? की छल हृदयक आशा ?
से गलि गेल जेना जल हाथक जल ऋतु जेना जवासा।
अपन अपन उन्नति सभ करितय, रखितय प्रेम परस्पर,
अपनहि अबितय स्नेहक रथ चढ़ि स्वर्ग उतरि भूतलपर।

इरषा द्वेषक पोबि गरल मरि गेल सहज अपनैती,
सुख - सौविध्यक संग एतय सँ लक्ष्मी आब पड़ैती।
व्यक्ति विशेषक कृत्य - कलापहि कोनो कुल चमकैये,
तहिना अपहत जनक काज सँ वंश कलङ्कित ह्वैये।

नारी - नयनक नोर भेल छल दशमुख वंश - विनाशन,
कुरु - सन्तानक लेल हैत पुनि तकरे जनु आवर्त्तन।
अत्याचारक आरि करैये पार जखन बर्बरता,
अनुभव - सिद्ध विचार कहैये अन्त एकर हर करता।

दशम सर्ग

नहिँ मारथि परतच्छ डाँग विधि,बुद्धि ज्ञान हरि लै छथि,
कहथि विभीषण धर्म, दशानन लात तुरत चलबै छथि।
नाशक काल विनाशक बुधिये नश्वर नीक बुझैये,
सपनहुँ मे नहिँ तकरा कोनो हितकर बाट सुझैये।

एखन अहाँ केर संग पातकी जे व्यवहार करै अछि,
तकरा देखि मनहिँमन के नहिँ तावा जकाँ जरै अछि ?
अथवा जड़ अछि जेना बनौने शिशिर रात्रि हिम शीतल,
उल्लुक तुल्य मुखर अछि केवल कर्ण प्रफुल्लित - हीतल।

मानव अर्थक दास, अर्थ नहिँ ककरो दास बनैये,
कुरु - कुलराजक अर्थ - दास छी आहत - बुद्धि कनैये।
अर्थक हाथ बिकायल मानव की प्रतिकार करैये ?
राज द्रोह मे त्रास अधर्मक बान्हि विवश कय दैये।

पराधीन कर्त्तव्य - हीन हम जन्म निरर्थक लेलहुँ,
इतिहासक आलोच्य पात्र मे अग्रगण्य बनि गेलहुँ।
प्रबलक पक्ष समर्थक ई जग नहिँ अबलक सहकारी,
दीन अनाथक रक्षक छथि ओ चक्र सुदर्शन धारी।

आब करथु आशा ककर के हरैत छनि त्रास ?
गेली चल कृष्णक शरण कृष्णा निपट निराश।

दीनबन्धु प्रणतारतिहारी, चक्रपाणि हे विश्व विहारी।
दुश्शासन तन वसन हरैये, भरल सभामे नग्न करैये।
भीष्म द्रोण कृप मौन भेल छथि, नहिँ समर्थ क्यो कहक लेल छथि।
पाँचो पति छथि मृतक समाने, भय सँ त्राण करत के आने।

दशम सर्ग

कुरुकुल जलधि-मग्न हम नारी, नाथ अहाँ अविलम्ब उवारी।
ककरो आस - भरोस न संवल, अहीं शरण शरणागतवत्सल।
छी हम अत्याचार - विधूता, निष्ठुर कौरव कुल परिभूता।
के असहाय जनक जगत्राता, एक अहाँ बिनु मंगलदाता।

गजक आर्त्त - रव सुनि चट गेलहुँ, अभय ग्राह सँ गज केँ देलहुँ।
दुख सँ दीन हमर सुनि क्रन्दन, लाज बचाउ अचिर यदुनन्दन।
हे योगेश योग तनु - धारी, अहाँ असंभव संभव - कारी।
शक्तिमान अँह अन्तर्यामी, त्राहि हरे नत - भाल नमामी।

द्वारवती मे कृष्ण छथि सूतल निज्र निवास,
आसन्दी[1] पर रुक्मिणी छथि बैसलि लगपास।
अकस्मात हरि सेज सँ चौंकि जेना उठलाह,
बहरायल लगले हुनक व्यस्त वदन सँ 'आह'।

नाथ कियै चौँकल छी? मुह सँ अछि बहरायल आह,
सूतल छलहुँ कतय टकरायल स्वप्नक तीव्र प्रवाह?
कोन अशोभन दृश्य देखिकय चमकि उठल मुखचान,
देखि दशा अपने केर हमरो उड़ल अनेरे प्राण।

प्रिये पुकारथि विकल द्रौपदी माङि रहल छथि त्राण,
दुश्शासन पट घीचि करैछनि नग्न निपट अज्ञान।
आकुल - प्राणक सोर हमर कय देलक चित्त अशान्त,
योग शक्ति सँ तुरत जाइछी, रहू अहाँ सभ शान्त।

काका मौन भेलाह, तकर बाद की ह्वैत छै,
पूछथि कुरुकुल नाह, संजय सँ उत्सुक मना।

---

१. आसन्दी=कुर्सी।

द्रुपद सुता जे प्रश्न उठौलनि, उत्तर नहिँ ककरहु सँ पौलनि।
दुर्योधन देलनि अनुशासन, घीचथि चीर अचिर दुश्शासन।
दीनबन्धु प्रणतारति-हारी, विकल पुकारथि द्रुपद कुमारी।
देह यष्टि जनु भालरि भेलनि, दृगयुग सावन घन बनि गेलनि।

महाराज, हम बहुत चकित छी, अद्भुत दृश्य देखि विस्मित छी।
अछि जाइत घीचल तनु-साड़ी, नीचा ढेर लागि गेल भारी।
रग विरंगक वसन अबैये, जानि न कोन शक्ति बढ़बैये।
दुश्शासन बड़ जोर लगौलनि, भेलनि बाँहि झूठ, मुह बौलनि।

सकल सभासद चकित निहारथि, लीला चक्रधरक अवधारथि।
दुःखक सरि जनु पार उतरला, जयजयकार करय सभ लगला।
जय जय दीन दुखी दुख भञ्जन, जय जय दानव वंश-निकन्दन।
जय जय करुणा सिन्धु खरारी, धर्मक रक्षक जय अनुसारी।

जय जय गिरि गोवर्द्धन धारी, जय जय व्रजजन मंगल कारी।
जय जय निर्दय कंस निषूदन, जय जय यादव वंश विभूषण।
नाथ, अनाथक लाज बचौलहुँ, वसन रूप अपने अपनौलहुँ।
धन्य धन्य प्रभु अन्तर्यामी, शत सहस्र नत शीश नमामी।

अद्भुत वसन-विवृद्धि सुनि समितिक जयजय कार'
भय सँ अन्ध कँपैत छथि मुह सँ बन्न बकार।
पसरि गेल मुख पर तिमिर ससरि गेल उत्साह,
कुरुकुल राजक रूप लखि कहय विदुर लगलाह।

महाराज, अपनेक बदलि गलि गेल नरोचित नीति,
पुतहुक चीरहरण नहिँ कोनो बुझलहुँ अहाँ अनीति।

दशम सर्ग

हमरा कहने छलहुँ कोन गप कोन एखन भेल काज,
की छल पुत्र करैत ताहि पर नहिँ विचार, नहिँ लाज।

मीठ मधुर दिस ताकि रहल छी भमरा पर नहिँ ध्यान,
अहाँ मनहिँमन आन बुझै छी आन बुझथि भगवान।
दुश्शासन निर्लज्ज जकाँ छल नग्न करैपर तूल,
पुछिऔ ओकरा भेल किये छौ मनसौठी निर्मूल ?

अपने केँ नहिँ नीक लगैये हमर अन्तहित बोल,
अहाँ बुझछी अमृत कन्द केँ अतिशय कबकब ओल।
छी हम थेथर लोक, कहैछी तेँ अवलोकि भविष्य,
भातिज लोकनिक हृत धन सम्पति नहिँ नृप हैत हविष्य ?

वंशक पुत्रबधू मे जनिकर सभ सँ उच्च-स्थान,
अहिंक आगु मे द्रुपद सुता सँ सहथि घोर अपमान।
कहू भाइजी, की थिक ई सभ सुख-शान्तिक ओरियान ?
कते विषादक विषय अहाँ पुनि छी बनि गेल अकान।

बेटा भाइ, अहाँकेर टेँटा निस्त्रप[1] दै छल गारि,
दे मुख चुम्बन मूर्ख कहै छल लाज बीज सभ टारि।
सभ्यताक प्रतिकूल कर्ण छल वारबधू बनबेत,
पुतहुक गंजन गारि अहाँ पुनि अविकृत छलहुँ सुनैत।

पाँचो पाण्डव, जेठ तहू मे निश्छल नेह-निबद्ध,
रहय अहाँ केर आज्ञा-पालन मे सदिखन सन्नद्ध।
तेँ नृप आयल, यदपि बुझै छल किये ह्वैत अछि खेल,
किन्तु न बुझलक मानवता अछि कुरुराजक मरि गेल।

१. निस्त्रप = निर्लज्ज

दशम सर्ग

तीत तीख कहि भूप कें विदुर ह्वैत छथि चूप,
अन्ध नरेशक गेल छनि बदलि मानसिक रूप।
पुत्रक कुत्सित काज छल पहिने पड़ल पसिन्न,
अधला आब बुझैत छथि तें फटकारथि खिन्न।

रे दुर्योधन, दुष्ट शिरोमणि हृदय-हीन दुर्जात,
भेल कलङ्कित तोर क्रिया सँ भरत वंश अवदात।
लीतहिँ जन्म किये नहिँ लेलनि तोर प्रेतपति प्राण,
गर्भहिँ तूबि जाय से उत्तम एहन नीच सन्तान।

लाज बीज संकोच कोना ई पीबि गेल अछि क्षुद्र,
बुद्धि-हरण कय लेलनि भरिसक रुष्ट महानट रुद्र।
पूज्य जनक प्रति अलज बजै छल सभामध्य अपशब्द,
शिर चढ़ि एकरा मृत्यु, गनै अछि दिवस मास ऋतु अब्द।

भक्त जनक विद्वेष सँ बिगड़ि जाथि भगवान,
तें कृष्णा कें कहथि नृप मन भय-भीत महान।

द्रुपद कुमारी, देब अहाँ कें मन वाञ्छित वरदान,
एखन अहाँ केर नीच नराधम कयलक बड़ अपमान।
लज्जित छी हम क्षमा मङै छी, छी हम तुल्य पिताक,
वितरित करब अहाँ केर मुह सँ जे बहरायत वाक।

महाराज, हम प्रणत कहै छी करयुग शिर संयुक्त,
धर्म-धुरन्धर होथु युधिष्ठिर दास्यभाव सँ मुक्त।
एवमस्तु हे पुत्रि! अन्य पुनि माङु अहाँ वरदान,
स्वीकृत कय हम करब अहाँ केर समयोचित संमान।

'श्रीअज्ञात'

दशम सर्ग

दास्य भाव सँ मुक्त होथु नृप, भीमादिक सभ भाइ,
सरथ सहानुज-पतिक संग हम तुरत एतय सँ जाइ।

एवमस्तु कल्याणि, तेसरो वर छी माङि सकैत,
की चाही से कहू, हर्ष सँ छी तुरन्त हम दैत।

माङब तेसर वर नहिँ समुचित क्षत्र कुमारिक हेतु,
महाराज, नहिँ तोड़ि सकब हम कखनहुँ नैतिक सेतु,
वैश्य एकवर माङि सकैये, क्षत्रवधू दुइ मात्र,
क्षत्रिय तीन, बहुश्रुत ब्राह्मण होथि शतावधि पात्र।

लोभ लाभ सँ नीति मार्ग केँ त्यागब बड़ अधलाह,
नैतिक छोड़ि अनैतिक पथ हम जायब नहिँ नरनाह।

पूज्य चरण, नहिँ करति द्रौपदी स्वप्नहुँ धर्म विनाश,
केहनो भूखलि रहथि सिंहनी खा न सकै अछि घास।
धर्मक प्रतिफल कृष्ण सभा मे हमर बचौलनि लाज,
जयतु जयतु, मति देथु विश्व केँ दीनबन्धु व्रजराज।

भगवानक भय सँ एखन सरल भेल छथि भूप,
कहथि युधिष्ठर केँ पुनः सारल्यक अनुरूप।
धर्मराज, अहाँक अनुपम धैर्य धर्मक धारणा,
एकर तुलना करत क्यो जग, नहिँ तकर सभावना,
आनि कयलक एहन लोकक कुटिल बड़ अवमानना,
व्यर्थ अयबा लेल कयलहुँ हम अहँक अभ्यर्थना।

उग्र रखितहुँ गरल गहुमन नहिँ कनेको क्रुद्ध छल,
क्षुद्र बेङक काज कुत्सित देखि यद्यपि क्षुब्ध छल।

दशम सर्ग

परुष वचनक चोट मन पर असह दैत अनार्य छल,
नीति पथ कें त्यागि तैयो नहिँ चलब स्वीकार्य छल।

पतित लोक उदार चरितक कय सकै अछि हानि की ?
कय सकै अछि वृन्द शलभक बह्नि कें अवमानि की ?
जकर रक्षा करथि ईश्वर सर्व द्रष्टा चक्रधर
तकर अधला करत इरखा द्वेष सँ की नीचतर ?

नहिँ अहाँ किछु हारलहुँ, वरदान से हम दैत छी,
जाउ पाँचो भाइ सकुशल इन्द्र प्रस्थ कहैत छी।
रोष राखब नहिँ अहाँ सभ निज अबुझ पितिऔत पर
थीक अपने अंग अन्तिम, की करब हे विज्ञवर।

जतहि बुद्धि विवेक क्षमता ततहि शम दम साम अछि,
सैह उत्तम पुरुष जगमे सैह धर्मक धाम अछि।
जाइ अछि मदमत्त हाथी बाट पर अगुताइ नहिँ,
झाँउ झाँउ करैत कुक्कुर अछि कोनो परबाहि नहिँ।

भरत कुरु अजमीढ़ बंशक योग्यतम सन्तान छी,
भारतक आकाश मे अँह नव्य निर्मल चान छी।
अहिँक ज्योत्स्ना सँ प्रकाशित भय सकै अछि मेदिनी,
भय सकै अछि अहिँक प्रतिभा शान्ति सुख संवेदिनी।

कुरुराजक वरदान सँ मुदित भेल सभ लोक,
अन्धतमस मे मग्न कें जनु भेटल आलोक।
सागर मे निपतित मनुज कें भेटल जनु तीर,
जयजयकार करैत अछि कुरुकुल नृपक अधीर।

फँसल जाल मे भाग्यसँ हरिण जकाँ भय-मुक्त,
धयलनि पथ पाण्डव लोकनि पित्तिक वाक्य-प्रयुक्त।

दशम सर्ग समाप्त।

—०—

'श्री अज्ञात'

एगारहम सर्ग

अशुभ काण्ड छल यद्यपि अवसित भेल,
किन्तु विकर्णक मन सँ भय नहिं गेल।
रहथि युयुत्सु। विमातृज बड़ अभ्यर्ण,
छथि करैत निज संशय व्यक्त विकर्ण।

औ युयुत्सु की बूझि पड़ैये दूर दुराग्रह गेल ?
कुटिल प्रपञ्चक बिड़रो सँ की मुक्त महीतल भेल ?
विद्रोहक धधकैत कृशानुक की ससरल सन्ताप ?
कुरुकुल सँ निमू'ल भेल की अज्ञानक अभिशाप ?

हमरा बूझि पड़ै अछि एखनहुँ छद्म-बुद्धि घुरिआय,
एखनहुँ छाया वैर - विरोधक परिसर मे नुड़िआय।
एखनहुँ अग्रज शान्त कहाँ छथि मन्त्रि-समाजक संग,
बात-विचार करै छथि कोनो नव रचनाक प्रसंग।

युयुत्सुः—

संशय सत्य अहाँक भाइजी, सत्य अँहक अनुमान,
करता भरिसक पुनि नव कोनो परिपञ्चक ओरियान।
युवराजक कय दूर दुराग्रह दैव देथु कल्याण,
दुर्मति मेटि, चढ़ाबथु आबहुँ सत्पथ पर भगवान।

नहिँ अछि मोल - महत्त्व हमर तेँ छी रहैत चुपचाप,
देखि अनर्गल काज हृदय मे यद्यपि बड़ सन्ताप।
द्रौपदीक सुनि आर्त्त वचन अँह बजलहुँ कने विरुद्ध,
कयलनि गंजन कते अहाँ केर अधिरथ-नन्दन क्रुद्ध।

१—युयुत्सु=कौरवक विमाता वैश्य जातिक स्त्री छलि, तकर पुत्र युयुत्सु छल तेँ विमातृज भेल।

Scanned by CamScanner

एगारहम सर्ग

बौरायल ने जानि किये सभ कुरुकुल केर समाङ,
भान ह्वैत अछि, गेल जेना हो कूपहि मे पड़ि भाङ।
करत अनैतिक काज देत नहिँ क्यो पुनि नीक विचार,
तेँ कहैत छी, नहिँ अछि ककरो सम्मत सन व्यवहार।

"द्रुपद कुमारी दे मुख चुम्बन वाम जाँघ पर बैसि"
कहत कोना क्यो सम्मत, "तोँ छेँ गेल हृदय मे पैसि"।
गुरु वर्गक सन्निधि मे एना बजनिहार जन धन्य,
धन्य कही पाण्डवकेँ, संयत की रहैत क्यो अन्य ?

कृष्णा केँ छल कर्ण कुटिल मति बारवधू बनबैत,
नहिँ क्यो किछु बजलाह सभा मे सभ जन रहथि सुनैत।
अपन प्रतिष्ठा दूरि करय क्यो से पुनि नीक बुझाइ,
वंशे अछि उन्माद - ग्रस्त ई कहल किये नहिँ जाइ।

चीर - हरण अवलोकि पितामह किये मौन रहलाह ?
निर्लज्जक साहस केँ देलक मौन हुनक नहिँ साह ?
उच्च छलनि व्यक्तित्व वीर्य बल उच्च छलनि अधिकार,
किये न देलनि दुर्योधन केँ बिगड़ि डाँट फटकार ?

सभ सँ वृद्ध छला कुरुवंशक सभसँ रहथि महान,
हुनक अवज्ञा कय सकैत के ? ककर एहन अभिमान ?
द्रुपद सुता केर आर्त्त सोर पर छथि असमर्थ बनैत,
दैव बताह बनौलनि हुनकहु अछि आश्चर्य लगैत।

पुतहुक लाज बचौने हुनका राज - द्रोह की ह्वैत ?
प्रत्युत अमिट कलङ्क पङ्क सँ छल कुरुवंश बचैत।

एगारहम सर्ग

कुपथ चलय सन्तान मना नहिँ करय मुख्य कुलवृद्ध,
लोकक निन्दा वचन - बाण सँ से की रहत अविद्ध ?

भातिज लोकनिक राजपाट धन - हरण छलनि मन काम,
शकुनिक कपटजाल मे बझलनि से सभ वस्तु तमाम।
किन्तु जखन दुःशासन कृष्णा केँ छल नग्न करैत,
तखन किये नहिँ डँटलनि बाबू लाभ छलनि की ह्वैत ?

स्वयं वहैछथि जखन युधिष्ठिर नहिँ छी द्यूत जनैत,
कुरुराजक करतूति अतीतक सभटा रहथि बुझैत।
कोन गुमानक वस्तु दुरोदर पित्तिक भक्ति कथीक ?
पैर बढ़ायब तखन आगि दिस की न बताहक थोक ?

कयलनि कृष्णक द्रुपद - नन्दिनी सुमिरन जखन करैत,
रंग बिरंगक पट्ट वसन छल ओर छोर नहिँ लैत।
सभाभरिक सभलोक करैछल कृष्णक जयजयकार,
विस्मित चित्त करैछल महिमा भगवानक स्वीकार।

तखनहुँ बड़का भाइ तजै छथि जँ नहिँ दुर्व्यवहार,
दैवक प्रेरित अग्रसर अछि निश्चय कुरु संहार।
निश्चय डाहत कुरु कानन केँ पाण्डव कोप - कृशानु,
भैया भाग्य भानु अछि देशक गेल अस्त गिरि - सानु।

विकर्णः—

तीर्थाटन मे विधिवश गेला मिलि महर्षि मैत्रेय,
हुनका सँ हम पूछल सविनय मनक वस्तु विज्ञेय।
मुनिवर, भारत नैतिकता सँ भेल जाइये दूर,
भेल जाइये लोभ मोह मद मत्सरता सँ पूर।

ककरा अनुचित उचित कहै छै, ककरा नीति अनीति,
नहिँ से बूझि रहल अछि, वहुधा अपन स्वार्थ सँ प्रीति।
हमरा भाइ सभक लीला सँ लखि लज्जित यमदूत,
करथि निरन्न प्रजाजन - शोषण - दोहन - दमन प्रभूत।

बड़का भाइ हमर दुर्योधन छथि बड़ व्यग्र विशेष,
पाण्डव लोकनिक देखि धाम धन गेलनि बढ़ि विद्वेष।
लेब हड़पि तेँ द्यूतक खेला केर करथि ओरियान,
परिणति हैत केहन, तेँ हम छी चिन्तित - चित्त महान।

मैत्रेयः--

लोकक संख्या गेल बहुत बढ़ि, गेल बहुत बढ़ि पाप,
हैत तकर परिणाम अवश्ये विपुल शोक सन्ताप।
कलिकालक अवतार सुयोधन सत्ते द्यूत करौत,
अन्त युद्ध सँ भारत केँ ओ दुर्बल दीन बनौत।

वत्स, अहींकेर नहिँ, ई सभहक लेल विषय चिन्ताक,
महा भयंकर लोक - विनाशक आयल कर्म - विपाक।
चिन्ता कयने हैत कोन फल ? दैवक गति दुर्वार,
करू अपन भरि शान्तिक सिरजन सैह अपन अधिकार।

युयुत्सुः -

लच्छन सैह बुझाइछ एखनहुँ लखि युवराजक मोह,
विफल - मनोरथ भरिसक दोसर रचना नव विद्रोह।
विदाभेल छथि कुरुराजक लग मान्त्रिगणक सङ भाइ,
आन किये अँखिऔत, चलू उठि संग दुहूजन जाइ।

× × × ×

एगारहम सर्ग

दुर्योधन छल-कपट-प्रिय नयन नीर बहबैत,
हिचकि हिचकि ओ बाप केँ अछि संबोधि कहैत।

सभ गुड़ गोबर कयल पिताजी, नहिँ राखल किछु शेष,
हमरा लोकनिक मूल उकन्नन की अछि उर उद्देश?
सम्हरल सफल अन्तपर आयल गेल बिगड़ि सभ खेल,
हमसभ बनलहुँ हाय विधाता महाबूड़ि बकलेल।

के अछि अर्जुन तुल्य धनुर्धर, भीम तुल्य बलवान,
कयलहुँ हमसभ एखन सभा मे तकर बहुत अपमान।
हमरा सभहक प्राण लेत डसि सविष चोटाओल साप,
तखन जन्मभरि अहाँ फैल सँ रहब करैत विलाप।

धृतराष्ट्र :—

पाण्डव लोकनिक संग शत्रुता तजि तोँ कर सद्भाव,
तोरा सभहक रहत बाउरे, अविचल शक्ति प्रभाव।
तोँ सभ रोपल धान, पाण्डुसुत जलबनि रहतौ मूल,
हैत तकर परिणाम सर्वथा सभ लोकक अनुकूल।

कयने तोँ सभ कते बेर छेँ प्राण लैक ओरिआम,
कहियो की भेटलौक सफलता सोच अरे अज्ञान।
परिजन पुरजन देश समाजक जँ चाहँइ कल्याण,
पाण्डव सभहक संग बदलि मन कर सिनेह संम्मान।

छल दुश्शासन द्रुपद कुमारिक साड़ी एखन घिचैत,
भेल किये कर झूठ? किये ओ बैसि गेल हकमैत?
कयलनि आकुल प्राण द्रौपदी कृष्णक जखन सुमार,
रंग बिरंगक वसन कतय सँ आयल सोच गमार।

एगारहम सर्ग

कृष्णक संमत गणतन्त्रक अछि रखने शासन देश,
ओकर राज्य मे शान्ति समन्वय नहिँ ककरहु किछु क्लेश।
शासन तोर अनैतिक रहितहुँ अछि सभ पाण्डव शान्त,
रे कह, कयलक कतहु आइधरि तोर प्रजा कें भ्रान्त?

ज्ञानवान अछि, शक्तिमान अछि, निकटक पुनि सम्बन्ध,
सहज विनीत क्रिया मे नहिँ छै कतहु असत्यक गन्ध।
देलें भार निर्णयक ओकरहि पत्नी छलै कनैत,
देख धैर्य, तों देख सत्यता नहिँ अछि बिचलित ह्वैत।
एहन मनुष्यक द्वेष अमंगल - मूल सनातन थीक,
घटन सकैये महिमा कखनहुँ सत्यमेव जयतीक।

दुर्योधन :—

नैतिकता सँ पूर्ण हमर अछि राजतन्त्र दृढ़ - मूल,
अन्य कारणें पाण्डुतनय नहिँ गेल हमर प्रतिकूल।
कृष्णक अनुमति लेत किन्तु ओ नहिँ छथि सहमत ह्वैत,
सम्बन्धक[1] किछु मोह होनि वा रण सँ रहथि डरैत।

विदुरक भाव सनातन रहलनि हमरा सभक विनाश,
तनिकर बात अहाँ सुनि लगले छी करैत विश्वास।
अहाँ हुनक इंगत पर जँ छी कोनो काज करैत,
कौरव कुलक विनाश सुनिश्चित छी हम सत्य कहैत।

शुद्ध सरल - मति अहाँ बुझै छी सभटा आनक आन,
हाँकल डाइनि तेहने मौगी तरु चढ़ि करय प्रयाण।

---

१. दुर्योधनक कन्या लक्षमणक विवाह कृष्णपुत्र साम्ब सं भेल छल।

एगारहम सर्ग

भूत प्रेत बेताल वस्तुतः चीर छलै बढ़बैत,
कृष्णक महिमा मानि अहाँ छी हमरा फटकारैत।

पत्निक केश ग्रहण सँ सम्प्रति गेल बहुत बढ़ि क्रोध,
पाण्डव लगले हमरा सभसँ लेत तकर प्रतिशोध।
जाइत काल बजै छल, आयब सत्वर सैन्य सम्हारि
प्रेतपुरी केर बाट धरायब कौरव-कुल संहारि।

सम्प्रति शत्रुक हैत आक्रमण निश्चय हमर विनाश,
अर्जुन भीमक आगु समर मे ककर करब हम आश ?
भीष्म द्रोण छथि वृद्ध तहू मे दुहुक दुहू पर प्रेम,
एकसर कर्ण कहाँधरि करता हमरा लोकनिक क्षेम ?

दिव्य आयुधक बेर-काल मे जयबह बिसरि प्रयोग,
कर्णहुँ केँ छनि गुरुक शाप तेँ विद्यमान मन-रोग।
तेँ अछि हमर विचार युधिष्ठिर केँ कहियो घुरतैक,
द्यूत सभा मे मात्र एक गुलि खेल आब चलतैक।

बारह वर्ष रहत जंगल मे हारि जकर होयतैक,
वल्कल धारण सदा तीर्थ व्रत धर्म पुण्य करतैक।
ग्राम नगर बसि वर्ष तेरहम रहत बनल अज्ञात,
बारह वर्ष रहत पुनि वन मे जँ अछि होइत ज्ञात।

द्यूत-कुशल मामाक कृपा सँ हैत हमर ध्रुव जीत,
शत्रुक-धनसँ बना लेब हम सकल भूप केँ मीत।
यदि च प्रतिज्ञा-मुक्त भेल रिपु करत राज्य केर माङ,
रहब शक्ति-सम्पन्न तखन हम देब मकैया डाङ।

एगारहम सर्ग

कहने छला वृहस्पति कहियो देवराज केँ नीति,
छल सँ बल सँ कोनो युक्ति सँ ली अरिजन केँ जीति।
तेँ नृपनीतिक तत्त्व समुझि - बुझि कृत्य भूमि पर आउ,
हमरा लोकनिक हित - रक्षा लय रिपु केँ तुरत बजाउ।

दैछ हड़ही गाय जहिना तोड़ि पगहा छान,
तोड़ि देलक नृपक तहिना बुद्धि समुचित बान्ह।
ससरि उक्ति - प्रभाव विदुरक नृपक उर सँ गेल,
स.वधान करैत बाजथि आब आगुक लेल।

जीति गेल तँ छलेँ, सर्वथा छलौ हस्तागत राज,
द्रौपदीक अपमान करै केर छलौ कोन कह काज ?
के छल एहन मनुष्य, जकर नहिँ तोरापर मनरुष्ट ?
तोहर गंजन गारि श्रवण कय ककर हृदय नहिँ क्रुष्ट ?

जँ अछि बाजल करब आक्रमण भय सकैत अछि सत्य,
विगड़ल हैत अवश्य कष्ट सँ पाण्डुक अखिल अपत्य।
पठा दूत केँ दौड़ि बाट मे कहतै हमर समाद,
आन उपद्रव उकठ आब नहिँ करिहेँ जीतिक बाद।

कुरु राजक अनुचित अशुभ स्वीकृति - वचन सुनैत,
गान्धारी उद्विग्न भय छथि अविलम्ब कहैत।

महाराज, अविलम्ब कोना अँह गेलहुँ बदलि विचार ?
अमृत मन्त्र कहि कयल किये, पुनि विष मन्त्रक उच्चार ?
लघुतम गिरगिट एते शीघ्र नहि बदलि सकैये रंग,
लगले झाँपि मनक द्युति देलक मोहक तिमिर तरंग।

'श्री अज्ञात'

एगारहम सर्ग

कमल पत्र पर जेना पानि नहिँ अटकि सकय क्षण एक,
तहिना नृप अपनेक हृदय नहिँ ठहरय बुद्धि - विवेक।
जहिना जल बलुआह खेत मे दीतहि तुरत सुखाय,
तहिना नृप, अपनेक हृदय मे हितकर बोध विलाय।

आगि मिझायल नीक जकाँ जे तकरा जुनि धधकाउ,
बन्हने बान्ह छलहुँ, नहि तकरा तोड़ि अनर्थ - वजाउ।
संयत शान्त सुमति पाण्डव केँ जुनि पुनि क्लिष्ट बनाउ,
दुष्टक फूसि कथा पर अपने लगले नहिँ उधिआउ।

ई थिक पुत्र, पुत्र नहिँ पाण्डव ? कियै बुझब हम आन,
स्वजन समाजक देशक ओ सभ मनुजाकृति कल्याण।
हराशंख ई करत कुटिल मति प्रकृति प्रजा केर ध्वंस,
तकरे पेनी छानि रहल अछि, थिक ई दोसर कंस।

वक्र - विचारक एकरा सूझय सभटा आनक आन,
कुकुरक नाङड़ि सोझ बनय नहिँ कयनहुँ यत्न महान।
कोना कहै अछि द्रुपद सुता केँ दुर्मुख हाँकल डानि,
कोना कहै अछि हमरा सभपर विदुर रखै छथि कानि।

सुन्दर सत्य सुखद बातहु केँ दुष्ट बुझै अछि तीत,
जन्महिँ साँ हम देखि रहल छी बुद्धि एकर विपरीत।
बुझितहुँ एकर निकृष्ट बुद्धि केँ अहाँ लैत छी मानि,
वंशक बनत विनाशक निश्चय पाप प्रपञ्चक खानि।

एकरा रुचि अनुकूल करब जँ अहाँ धराधिप, काज,
जा धरि जीव, निरन्तर कानब जाउ सम्हरि महराज।

एगारहम सर्ग

एहन कपूतक ऊपर अपने केर वृथा अनुराग,
देश - वहिष्कृत करू, कहै छी करू एकर प्रत्याग।

जनसाधारणः—

देश - बहिष्कृत करु कहै छी करू एकर प्रत्याग।

धृतराष्ट्रः—

महारानि, मन हमर कहै अछि एकर कथन छै सत्य,
बिगड़ल हैत अवश्य दुःख सँ पाण्डुक अखिल अपत्य।
बातहुँ काजहुँ कयलक ई सभ बहुत अधिक अपमान,
उत्तेजित भय कय सकैत अछि आक्रमणक ओरियान।

तर्कित रण आतंक कहै अछि राजा खेल कराउ,
शान्त रहू कल्याणि, काल किछु नहिँ बेसी चिचिआउ।
भय सँ दूर रहैक रुचै छथि बुध जन आन विचार,
आगत भय मे तुरत करै छथि समयोचित उपचार।

भाइक पुत्र थिका सभ पाण्डव भातिन नहिं सन्देह,
दुर्योधन सभ भाइ किन्तु थिक अपने दोसर देह।
ठनका सभ ठनकैत लोक अछि अपने आँखि मुनैत,
रानी, सोचि सकै छी कहबी की अछि व्यङ्ग्य करत।

कानन मध्य तपस्विक जीवन बारह वर्ष बितौत,
अपनहिँ राज्यक लोभ लाभ तजि मुनिक वृत्ति अपनौत।
एकरा लोकनिक रहत अकंटक रत्नाकर धरि राज,
खेल करौने सिद्ध ह्वैत अछि एक पंथ दुइ काज।

× × × ×

एगारहम सर्ग

धर्मराज दूतक मुहें कुरुराजक संवाद,
सुनलनि, गुनलनि दैव पुनि अनलनि बिषम विषाद।
विषय बूझि द्रुत द्रौपदी भीमादिक सभ भाइ,
छथि कहैत घुरि आब जुनि अहाँ अवनिपति जाइ।

धर्मराज पित्तिक वचन टारब कठिन बुझैत,
करितहुँ सभक विरोध छथि नियति - निवद्ध चुरैत।
हुनका अबितहि द्यूतगृह जन सामान्य उठैत,
एक द्विजक नेतृत्व मे अछि उद्घोष करैत।

नेता :— आब युधिष्ठिर खेल करू जुनि,
जनता :— आब युधिष्ठिर खेल करू जुनि,
नेता :— कौरव लोकनिक चक्रचालि मे फेर पड़ू जुनि,
जनता — कौरव लोकनिक चक्रचालि मे फेर पड़ू जुनि,

नेता :— आब युधिष्ठिर खेल करू जुनि,
जनता — आब युधिष्ठिर खेल करू जुनि,
नेता :— धूर्त्त जुआरी जीति लेत पुनि,
जनता :— धूर्त्त जुआरी जीति लेत पुनि,

ता :— कौरव केँ नहिँ दया धर्म छै
झंझट मे ओ फँसा देत पुनि,
जनता :— कौरव केँ नहिँ दया धर्म छै
झंझट मे ओ फँसा देत पुन,

नेता :— धूर्त्त जुआरी जीति लेत पुनि,
जनता :— धूर्त्त जुआरी जीति लेत पुनि,

नेता :— दुर्नीतिक सीमा अछि टूटल,
जनता :— दुर्नीतिक सीमा अछि टूटल,
नेता :— खेल करब तँ भारतवर्षक,
जनता :— खेल करब तँ भारतवर्षक,

नेता :— जूटल भाग्य पुनः अछि टूटल,
जनता :— जूटल भाग्य पुनः अछि टूटल,
नेता :— दुर्नीतिक सीमा अछि टूटल,
जनता :— दुर्नीतिक सीमा अछि टूटल,

कहथि युधिष्ठिर कर युग जोड़ि,
लोक समूहक दिस मुह मोड़ि।

जखन कहै छथि हमरा खेलक लेल पिता कुरुराज,
क्षत्रिय सुनि ललकार विपक्षक कोना अबैये बाज ?
छी जनैत हम की अछि द्यूतक कष्ट - पूर्ण परिणाम,
नित्य निरंकुश करथु विधाता पूर्ण अपन मनकाम।

हमरा सभ के छलनि देंयादक नहिँ किछु दुःख अदेय,
अहाँ सभक सद्भाव सनातन रहल हमर पाथेय।
दुर्नय आधृत चलारहल छथि एखनहुँ हिंसक नीति,
रहत अनुग्रह अहाँ सभक तँ अन्त विवेकक जीति।

द्यूतक संविद - घोषणा अछि गान्धार करैत,
धर्मराज उन्मत्त जनु छथि स्वीकार करैत।

मान्य युधिष्ठिर दुहूपक्षक्य एक प्रतिज्ञा छेक,
द्यूत सभा मे मात्र एकगुलि आब खेल चलतैक।

एगारहम सर्ग

बारहवर्ष रहत जंगल मे हारि जकर होयतैक,
बल्कल धारण करत तीर्थव्रत धर्म - पुण्य चलतैक।

हाथक आङुर भीम दिस मुह सँ बोल करैत,
दुश्शासन चिढ़बैत अछि अनुजक संग नचैत।

चलल दुरोदर खेल, होनी छल से भेल।
पाण्डुतनूजक हारि, कहलक शकुनि प्रचारि।
वल्कल वसन कदम्ब, कुरुसेवक अविलम्ब
आनि, राखि अछि दैत, पाण्डव छथि पहिरैत।

दुश्शासन :—देख बड़द कें देख बड़द कें,
अनुजगण :—देख बड़द कें देख बड़द कें,

दुश्शासन :—पौरुख - हीन अशक्त बड़द कें,
अनुजगण :—पौरुख - हीन अशक्त बड़द कें,

दुश्शासन :—मोटसोंट निबुद्धि बड़द कें,
अनुजगण :—मोटसोंट निबुद्धि बड़द कें,

दुश्शासन :—हारल मारल मूढ़ बड़द कें,
अनुजगण :—हारल मारल मूढ़ बड़द कें,

दुश्शासन :—देख बड़द कें देख बड़द कें,
अनुजगण :—देख बड़द कें देख बड़द कें,

आन्ही जनु औनाइ अछि करब कोना उद्भ्रान्त,
किन्तु हिमालय सर्वथा अछि अविचल, अछि शान्त।

एगारहम सर्ग

घोल - घपच्चा कय कुटिल हारि थाकि सभ गेल,
धनि सन कोनो बात नहिँ पवन कुमारक लेल।
तदनन्तर खल द्रौपदी केँ अछि टोकि कहैत,
उच्छृंखल परिचय अपन क्षुद्रताक अछि दैत।

द्रुपदक बेटी, पाण्डव सभ सँ कोन मोह छौ, छोड़,
दीन दरिद्र मृतक सभ पाण्डव एकरा सँ मुह मोड़।
हमरा लोकनिक मध्य यथारुचि ले ककरहु पति मानि,
रहबेँ रानी बनलि हस्तिनापुर आनन्दक खानि।

काठक हाथी सँ कह ककरो कोन काज चलतैक?
गाछक बाँझी धानक झर सँ के न हाथ मलतैक?
पशु पंछी पर्यन्त बुझै अछि अपन अपन हित हानि,
मूर्खक संग छोड़ि, चल हमरा घर ककरहु वर मानि।

बाघ सिंह शरभक चाङुर मे विपिन मध्य पड़तैक,
अन्न - पानि बिनु लटि लटि किंवा गिरिवन मे मरतैक।
राज्यक आशा मृग - तृष्णा सभ नित्य विफल रहतैक,
ग्राहक मुह सँ मुक्ति असंभव मति - हीनो कहतैक।

पाण्डुतनय सभ सज्ज भय द्रुपद कुमारिक संग,
चलता तेँ क्रमशः कहथि आगुक कर्म - प्रसंग।

भीम :—

गुरुजन पुरजन सुनथु प्रजाजन पृथ्वी पतिसमुदाय,
कौरव लोकनिक काज देखलनि राखथु हृदय जोगाय।
तेरह वर्षक बाद जखन हम हैब प्रतिज्ञा - पार,
स्वयं कहैअछि देत न हमरा दुष्ट हमर अधिकार।

'श्री अज्ञात'

एगारहम सर्ग

रहत लड़ाइक बिनु की दोसर हमरा तखन उपाय ?
बझतँ, रहते हमर काज की से छी देत सुनाय।
जाहि हाथ सँ खल दुरशासन घिसिऔलक धय केश,
गाय गाय' कहि द्रुपद सुता के देलक दुःख विशेष।

पकड़ि पछाड़ब बाँहि उपाड़ब रण से सभक समक्ष,
द्रौपदीक हम केश भिजायब देखत ठाढ़ बिपक्ष।
एकरा बाँहिक रुधिर - धार सँ सिक्त न जाधरि हैत,
द्रुपदनन्दिनिक फूजल ताधरि केश न बान्हल जैत।

बड़द बड़द कहि हमरा सम्प्रति छाती अछि फुलबैत,
छाती फाड़ि एकर हम पीबैं रक्त, बुझा छी दैत।
उठा हाथ ई एखन हर्ष सँ नाच करै अछि क्षुद्र,
नचब हमहूँ जेना नचै छथि प्रलयकाल मे रुद्र।

जँ हम बड़द थिकहुँ तँ शूलिक बाहन बड़द विशेष,
हमर पीठ चढ़ि प्रलय मचौता शूलपाणि प्रलयेश।
जीति लितय यदि बाहुक बल सँ गर्व छलै किछु सार्थ,
छल-कपटहि के बूझि रहल अछि कायर कुल पुरुषार्थ।

कौरव बन्धु सभहुँ बड़ हर्षित चिकरि दैत अछि गारि,
ताकि ताकि यमलोक पठायब रण मे पकड़ि पछाड़ि।
कुलिश हस्त इन्द्रो नहिँ ककरो बचा सकै छथि प्राण,
के अछि मानव वीर एहन जे करत बिघ्न व्यवधान ?

द्रुपद सुता के शठ दुर्योधन लाज बीज सभ टारि,
कहि अश्लील कथो दरसौलक वामा जाँघ उघारि।

रण - नीतिक प्रतिकूल जाँघपर करब गदाकेर घात,
बड़द बड़द कहि तखन अलज्जक शिरपर मारब लात।

हमर चाट की सहि सकैत अछि शरभ सिंह शार्दूल,
जीवन पोषक हैत अरण्यक कंदमूल फल फूल।
पवन - पुत्र हनुमान जेना छथि लैत निशाचर प्राण,
तहिना पवन-पुत्र हम करबै कुरु वंशक अवसान।

एखनुक कौतुक मोन पाड़ि कय रहथु वृद्ध कुरुराज,
मोन पाड़ने रहथु सभ्यजन अभिजन नृपति समाज।
हमर प्रतिज्ञा जखन युद्ध मे सफल ह्वैत देखताह,
आशा अछि, नहिँ धर्म विरोधी हमरा क्यो कहताह।

द्रौपदीः —

भातिज सभ केँ बजा पठौलनि बड़ प्रेमें कुरुराज,
लेलनि छीनि सगर धन-धरती बुझि मन उत्तम काज।
हमर आर्त्तिपर नहिँ बहरयलनि धोखहुँ मुहक बकार,
सुख सँ सुनता तेरह वर्षक बाद कुरुक संहार।

नैतिक बन्धन - बद्ध सिंह केँ देखि गीदड़क जेर,
शिष्टताक प्रतिकूल कामना करय सिंहनी केर।
क्षुद्र न बूझि रहल अछि जहिया बन्ध - मुक्त हरि हैत,
तहिया निशित नखर सँ छाती फाड़ि रक्त पिबि जैत।

अपमानक जे काज कौरवक भेल सभा मे छैक,
मोन पाड़ने रहति द्रौपदी बिसरि कोना सकतैक ?
दुःशासन केर बाहु रक्त सँ जाधरि नहिँ भिजतैक,
ताधरि केशकलाप द्रौपदिक ई फूजल रहतैक।

एगारहम सर्ग

अत्याचारिक अदय हाथ सँ हमर जाइ छल लाज,
बड़ बड़ वीर विवेकिक रहितहुँ नहिँ देलनि क्यो काज।
जनिक अनुग्रह उबरि गेल छी सभा मध्य हम आइ,
करता पूर्ण हमर प्रण निश्चय निरवधि करुण कन्हाइ।

अर्जुनः-

हमरो प्रण सुनि लेथु आर्यजन सभा मध्य उपविष्ट
देखि चुकल छथि, जेहन अनर्गल कयलक काज अशिष्ट।
बड़बा लेल न्याय केँ कोना विवश करय अन्याय,
एखनहुँ देखलनि, देखि सकै छथि सुधी आगुओ जाय।

विश्व जनै अछि युद्ध धरित्रिक लेल महा अभिशाप,
तइयो सृष्टि करै अछि युद्धक व्यक्तिक दुर्दम पाप।
निरपराध जन कते मरैये ह्वै अछि कते अपंग,
वह्नि ज्वाल पर आबि जरैये अपनहिँ कीट - पतंग।

लघु बड़ ककरहु लेल न बढ़ियाँ युद्धक फल अछि ह्वैत,
जेता जित दूनुक जीवन केँ अछि रण दग्ध करैत।
एक अधम चाण्डाल करैये तेहन स्थितिक निर्माण,
युद्ध करैछ विवश भय दोसर देखि उपाय न आन।

छलमय द्यूतक बल सँ जितलनि राजपाट धनबीत,
तकरहि निज पुरुषार्थ बुझै छथि पाप - प्रपंचक मीत।
धर्मक बन्धन मान्य हमर अछि, तेँ छी हम सभ चूप,
हमरा सभकेँ कहुथि षण्ड[1] तिल स्वयं षण्ड तिल रूप।

१—षण्ड तिल= नपुंसक।

एगारहम सर्ग

एखनुक जीत, जीत जुनि बुझथु उन्मद हमर देयाद,
असल जीत तँ हैत युद्ध मे तरेह्वर्षक बाद।
नाच करै छथि, कचकचबै छथि बड़ छथि एखन प्रसन्न,
सुनि राखथु कनताह एक दिन रनवन विकल विपन्न।

कुरुराजक सन्तान न करितय कखनहुँ एहन उकाठ,
जँ नहिँ कर्ण पढ़बितय सभके वैर - विरोधक पाठ।
अपन प्रशंसा सँ मनुजाधम बना दैत अछ ढोल,
तें नहिँ ई सभ अपन आँकये साहस शक्तिक मोल।

इरखा द्वेष रखै अछि हमरा सभसँ अधिरथ पुत्र,
अपने मनहिँ बुझै अछि पापी हमरा सन के कुत्र।
द्रुपदराजसँ रणमे सभ ,सँ पहिनहिँ गेल पड़ाय,
एकरा पाछु पड़ायल लगले कुरुपति सुत समुदाय।

स्वयं स्वयंवर मे हमरा सँ छल भागल रण ठानि,
अछि निर्लज्ज केहन कौरव के चढ़ा रहल अछि पानि।
फूसिक खेती बहुत काल धरि नहि पापिक चलतैक,
हमरहि हाथें समर भूमिमे मृत्यु वरण करतैक।

किये करै अछि रविक अर्चना ? किये करै अछि दान,
विश्व विनाशन जखन करै अछि युद्धक खातिरियान।
अाज कुल के सदिकाल स्वशक्ति हरियर तृण देखबैत,
रणचण्डी बनि लेल तकर पथ पापी अछि धरबैत।

जँ हमरा सभ पास रहल छी नीति धर्म सप्रीति,
जतय धर्म अछि ततय कृष्ण छथि जतय कृष्ण तत जीति।

उठा हाथ हम प्रण करैत छी सुनथु दशो दिक्पाल,
जँ हम युद्ध विवश भय ठानब थिकहुँ कर्ण केर काल।

त्यागि सकै छथि अपन उष्णता तिग्म किरण दिवसेश,
शैत्य त्यागि शशि भय सकैत छथि दाहक-धर्म-विशेष।
भय सकैत छथि अचल हिमालय अकस्मात गतिमान,
हमर प्रतिज्ञा लय न सकैये परिवर्त्तन किछु आन।

नकुलः—

हमर सभ पितिऔत रचलनि कूट कपटक काण्ड,
राज्य छल सँ छीनि भरलनि पाप कर्मक भाण्ड।
कहि कथा अश्लील कयलनि द्रौपदिक अपमान,
मानवक इतिहास मे अछि एहन कृत्य त आन।

औचित्तिक प्रतिकूल काजक नोक फल की हैत?
पाप - कर्मक घैल आइ त काल्हि फुटिए जैत।
हँसथु बाजथु कचकचावथु गालेथु सभजन नाचि,
छलक की परिणाम, कहतनि काल कहियो बाँचि।

छलहुँ संयत शान्त तइयो नित्य कयलनि तंग,
कोन संभव, आब करता अपन दुर्नय भंग?
थिकहुँ तेज प्रधान क्षत्रिय जँ विवश करताह,
वाण - वात्या[1]चक्र मे सभ तृण जकाँ उड़ताह।

सहदेवः—

शकुनि, तोहर धूर्त्तता नहिँ काज रण मे देत,
चलत एको छल कपट नहिँ तोर युद्धक खेत।

---

१. वात्या=बिड़रो,

एगारहम सर्ग

तों एखन निज चातुरी पर छें मुदित मतिमंद,
लेत रोदन रूप एक दिन तोर ई आनन्द।

शकुनि तोरा लेल हमरे वाण बनते बाज,
लक्ष्य निश्चित तों हमर, नहिँ छैक अनकर काज।
बन्धु - बान्धव सहित तोरा लेल हम यमदूत,
मौन रखने रह नराधम, सुनि हमर प्रण - पूत।

धूर्त्त शकुनिक छल कपट सँ छीनि लेलनि राज,
पुत्र - हित बुझि बड़ प्रफुल्लित छथि एखन कुरुराज।
बूझि राखथु अक्ष शकुनिक तेहन रचलक पाप,
आमरण कनबैत रहतनि अग्निसम सन्ताप।

युधिष्ठिरः—

धर्म पर अस्तित्व जगतक धर्म विश्वक प्राण
बुध विनिश्चित नियम-नय सभ धर्महिक अभिधान।
तकर पालन करत नर नहिँ, के करत पुनि आन ?
तें तकर निर्वाह हम सभ करब सहि अपमान।

कोन दुःखक बात, विदिते सुख दुखक संसार,
तकर त्रास अवश्य की अछि द्वैत पुनि व्यापार।
सनकि उन्मद गर्व कलहक भूमि अछि बनबैत,
सात्त्विकहु कें ठाढ़ कय प्रतिपक्ष मे अछि दैत।

लेल हम आदेश पितृक आँखि मुनि स्वीकारि,
तकर फल अछि प्राप्त जे किछु जाइ छी अवधारि।
अग्निमहुँ नहिँ करथु बसिला केर फर छिलाइ।
रगड़ पड़ने आगि काठहु सँ विवश बहराइ।

एगारहम सर्ग

दोष, दुर्गुण लोक मे की देथि सिरजनिहार ?
गुप्त रखितथि अपन निधि तँ स्वर्ग छल संसार।
जीव जीबय देव आबहुँ देथु ईश्वर ज्ञान,
भावना अछि, कामना अछि विश्वजन - कल्याण।

मुह मिठायल चक्र - चालिक रुद्ध गति नहिँ हैत,
भद्रता निरुपाय अन्तिम बदलि रण मे जेत।
तकर पुनि परिणाम तँ जग सीखि जँ किछु लेत,
धारणा अछि क्यो अनीतिक बाट पद नहिँ देत।

दुर्गे दुर्गति - हारिके !
दुर्गुण दोष निबारिके !
सभ केँ मा कल्याण दे
सर्व - शुभोदय ज्ञान दे।

एगारहम सर्ग समाप्त।

—०—

आत्म-प्रसंग

देखल चैत बहत्तरि कहियो रहल न जीवन शान्त,
निष्ठुर नियति बनौने रहली सभ दिन चिन्ताक्रान्त।
किछु लिखैक मन इच्छा रहितहुँ छल कुण्ठित उद्योग,
चिन्तातुर स्वयमेव हृदय की दैत कोनो सहयोग ?

स्वच्छ हृदय - हिमगिरि सँ कविता - सुरसरिता बहराथि,
विमल व्योम यदि, बसुधातलपर चन्द्रकला लहराथि।
देलनि किछु अवकाश शारदा उठल हृदय उद्वेग,
वृद्ध अवस्थहु उद्वेलित भय कलम उठौलक डेग।

मैथिलीक कृत काव्य 'रुक्मिणी - परिणय' प्रथम प्रसून,
भारतीक पदयुग पर अर्पल, हृदय भक्ति अन्यून।
प्रलय - पयोधिक पतन - शीलतर गेल पहुँचि संसार,
जकरा आँखि, करै अछि केनहि सम्प्रति हाहाकार ?

हमरो ई आक्रोश 'प्रतिज्ञा - पाण्डव' दोसर फूल,
शारदाक पद प्रणत दैत छी जगतक मंगल - मूल।
ज्ञानमयी मा मानव - हृदयक दानवता कय दूर,
करू दयामयि, सन्मति - मण्डित मानवता सँ पूर।

हंसवाहिनी, भय सकैत छी अहीं सहायक साँच,
दीन पुजारी केर जैत मिलि जखन पाँच मे पाँच।
जप-तप, संयम - योगक बल नहिँ नहिँ, संबल किछु आन,
कय सकैत छी एक अहीं माँ अन्त हमर कल्याण।

अहीं लिखौलहुँ हमरा सँ किछु जखन अनुग्रह भेल,
परम अकिञ्चन कृपाकांक्षि हम अहिँक चरण पर देल।
नहिँ जनैत छी, कखन पिसायब महाकाल केर जाँत,
चतुरशीति पर गेलहुँ जरसा भेलहुँ हम अपस्याँत।

'श्रीअज्ञात'

हमर जीवन यात्रा

हमर जन्म सन् १३११ साल फसली, चैत्र शुक्ल नवमी शनि दिन (२६ मार्च १९०४ ई०) बाथ ग्राम मे भेल छल। बाथक दक्षिण मधेपुर बाजार, उत्तर मे सुन्दरपुर, पूर्व तरडीहा आ पश्चिम कछुआ। माताक नाम द्रौपदी देवी आ पिताक नाम कंटीर झा। पितामहक नाम रंगलालझा। हमरा बाल्य-काल मे पितामह आ पितामही जिवैत रहथि। पित्तीक नाम जयदेव झा, ओ साक्षर रहथि। पनिचोभय तारि सँ मूल ग्राम आ सावर्ण्य गोत्र। मध्यम वित्त परिवार।

हमर प्राइमरी शिक्षा गामहि मे भेल। तकर बाद किछु पढ़व गाम सँ अन्यत्र गेनहिँ संभव छल। हमर पिताजीकेँ हमरा पढ़ायब इष्ट नहिँ छलनि। ताहि समय गामक सामाजिक स्थितियो तेहने सन। महिस बड़द पाली, खेती पथारी मे लागल रही। महिस चरावी, घास काटी, घरक काज-उदम करी। हमरा पढ़वाक उत्कट इच्छा। कहिअनि तँ बाप कहथि, की करबह पढ़िकय ?

नियतिक खेल, हमरा पढ़वाक व्यसन। हिन्दी मैथिलीक जे कोनो पोथी भेटय. पढ़ल करी, राति केँ, दुपहर केँ, जखन अवकाश भेटय तखन। कोनो खेल मे अभिरुचि नहिँ। खास कय तुलसीदास कृत रामायण केँ तँ नीक जकाँ आत्मसात् कयलहुँ तखन आनो पोथी सभ। शब्दार्थ-ज्ञान बढ़ि गेला सँ अध्यातम रामायण, दुर्गा सप्तशती पढ़य लगलहुँ, अर्थो बुझय लगलहुँ। हिन्दी व्याकरण वाटिका सँ पढ़ि गुनि अवगत कय गेलहुँ। चन्दाझा क रामायण सेहो कालक्रममे पढ़लहुँ। ओहि काल मे जे उपन्यास बहरायल रहैक, जेना चन्द्रकान्ता, इत्यादि सभ पढ़ैत गेलहुँ। हमरा गाममे किछु दिन पं० रुद्रमणि मिश्र भेजा वासी रहलाह, हुनका सँ सन्ध्या वन्दन सिखल, संस्कार पद्धति अवगत कय गेलहुँ। लगपासक अल्पज्ञ ज्योतिषी लोकनि सँ शिशुबोध, नाह्नि दत्त पचीसी, मुहूर्त्त चिन्तामणि पढ़ि लेलहुँ, पश्चाति लघु जातक, वृहज्जातक सेहो।

आब संस्कृत व्याकरण किछुओ पढ़व आवश्यक बूझि पड़य लागल। की करब? हमरा गाम सँ तीन माइल पर मधेपुर, मधेपुर मे रहैक हाई स्कूल, हाई स्कूल मे रहथि संस्कृताध्यापक पं० लक्ष्मीनाथ झा श्रोत्रिय।

ओ जेहने विद्वान् तेहने सहृदय। भिनसर सँ आवश्यक काज करी आ दुपहर मे द्रुतगतियेँ जाइ, ओ पढ़ा देथि आ झटकारने आवि महिस खोलि चर-बय विदा होइ हाथ मे लघु कौमुदी नेनहिँ। महिसियो चरावी आ कण्ठस्थो कय ली। एना लघु कौमुदी अधीत कयलहुँ। एहिपार सँ ओहि पार अपुस्तक पढ़ि जइयैक। ओहि सँ ततवा अवगति भय गेल जे कुमार संभव सात सर्ग मल्लिनाथकटीका क बलेँ पढ़ि गेलहुँ आ नीक जकाँ बूझि गेलियैक।

संयोग सँ एक दिन गाड़ा टोल गेलहुँ, जे हमरा गाम सँ ४ कोस उत्तर छैक। संस्कृतक विद्यालय ओहि गाम मे नवे भेल छलैक। अध्यापक रहथि पं० हरिनारायणझा श्रोत्रिय। वार्त्तालापक क्रममे ओ प्रेरित कयलनि, हुनकहि नामे प्रथमा परीक्षा देलहुँ। प्रथम स्थान भेटल, चारि रुपैया छात्र-वृत्ति। पिताजी केँ कहलिअनि, हमरा बदला मे एक नोकर राखि लिअऽ हम दू रुपैया वेतन ओकरा देबैक। हमरा पढ़बाक अवसर दिअऽ, ओ अंगीकार कयलनि। प्रथमा परीक्षा हम १९३० ई० मे उत्तीर्ण भेल छलहुँ। गाड़ा टोल मे ओहि पंडित जी सँ अनेक बिघ्न बाधा रहितहुँ सिद्धान्त कौमुदी पढ़ि १९३२ ई० में मध्यमा उत्तीर्ण कय गेलहुँ। ओहि समय हमर वयः क्रम २८ वर्ष छल।

दुर्भाग्य सँ हमरा पिताजी केँ पढ़यबाक इच्छा तँ नहिँ रहनि, परञ्च हमर विवाह करा देने रहथि। भरिसक १६. १७ वर्षक अवस्था मे। जे हमरा जीवन-निर्माण मे भारी बाधक सिद्ध भेल। हमर विवाह जाहि साल भेल ओहि साल क कार्त्तिक मे हमर माता आ पितामही दिबंगता भय गेलीह विसूचिका सँ। हमर पिताजी दोसर विवाह कयलनि। हमर ओ सतमाय स्वभाव सँ नीक रहथि। परञ्च हमर दुर्भाग्य, ओहो एक दू वर्ष मे शान्त भय गेलीह।। तखन पिताजी तेसर विवाह कयलनि। इयेह छल हमर घरक स्थिति आ एही स्थिति मे हम किछु पढ़वा लय आतुर।

 'श्री अज्ञात'

मध्यमा कयलाक बाद विद्यालय पर जा कय किछु पढ़व असंभव छल। अतएव साहित्यक दिस अग्रसर होयबाक मनोवृति बनौलहुँ। काव्य ग्रन्थ सभ पर बहुत किछु दक्षता प्राप्त रहय, लक्षण ग्रन्थ गुरुमुख सँ श्रोतव्य छल। ओहि वर्ष गौसपुर सहर्षा-निवासी पं० त्रिलोकनाथ मिश्र लोहना विद्यापीठ मे प्रिन्सि-पल बनि आयल छलाह।

ओ हमरा चिन्हैत रहथि। गाड़ा टोल मे पहिने ओ एक दिन आयल रहथि, आ हम हुनक हिन्दी पद्य मे अभिनन्दन कयने छलिअनि। हुनका सँ १०-१५ दिन मे पाठ्य लक्षण ग्रन्थ सुनि ली आ गाम आबि ठीक करी। एहि तरहेँ साहित्य शास्त्रीक दूनू खण्ड उत्तीर्ण कय गेलहुँ। एक सीमा धरि जयबाक उत्कण्ठा छल, परञ्च गामहि पर रहि किछु करब असंभव भय गेल। तखन आँखि मुनि कलकत्ता चल गेलहुँ। संस्कृत कालेज मे तँ स्थान नहिँ भेटल, तेँ विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी हौस्पीटल एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता मे आयुर्वेद क अध्ययनार्थ - छात्रवृत्ति पाबि रहय लगलहुँ। लक्षण गन्थ तँ पूर्ववत् उक्त पण्डित जी सँ सुनि गेले रही आ ओकरहि ठीक करबा मे लागि गेलहुँ। वैद्यक नहिँ पढ़ियैक। अस्पतालक आयुर्वेद विभागक अध्यक्ष छलाह हरि जोशी। उच्च कोटिक वैद्य तँ रहबे करथि साहित्य शास्त्रहु क ज्ञाता रहथि। विद्यार्थी लोकनिक चुगली कयला पर ओ हमरा बजौलनि आ कहलनि,—तुम आयुर्वेद नहीं पढ़ते हो? हम कहलिअनि, गुरुवर विहार से मैंने साहित्य शास्त्री पास कर लिया है और अगर मैं आचार्य के दोनो खण्ड उत्तीर्ण हो जाता हूँ तो मुझे आयुर्वेद के शास्त्री से ही परीक्षा देने का अधिकार मिल जायगा।

हम पहिले दिन हुनका संस्कृत मे पद्य वद्ध अपन परिचय आ प्रार्थना पत्र देने रहिअनि, ताहि सँ ओ प्रभावित छलाह, हमर उक्त विचार सुनि ओ हमरा आज्ञा दय देलनि। हम १९३६ ई० मे कलकत्ता क काव्य तीर्थ, विहारक आचार्य आ बड़ौदा गायक वाड़ राजक दान परीक्षा साहित्योत्तमा उत्तीर्ण कय गेलहुँ। बड़ौदा राज सँ निर्धारित द्रव्य भेटवो कयल।

बड़ौदा सँ आबि विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी संस्कृत मह विद्यालयक लेख परीक्षा मे बैसलहुँ। संस्कृत लेख परीक्षा मे प्रथम अयलहुँ तेँ स्वर्णपदक आ हिन्दी मे महावीर प्रसाद द्विवेदीक पुस्तक सभ भेटल।

अस्पताल मे जोशी जी केँ कहलिअनि, गुरुवर मेरे घर की स्थिति अच्छी नहीं है इसलिये अगर आप गीता प्रेस गोरखपुर के लिये सिफारिश कर दें मुझे वहाँ कोई काम मिल जायगा। कल्याणक सम्पादक सँ हुनका बड़ हेम-क्षेम रहनि। हमरहि सँ कोनो पत्र की कोनो लेख लिखा कय पठवथिन। हू वर्षक सम्पर्कमे हमरहु ओ बड़ आदर दृष्टि सँ देखथि, कखनहुँ काल किछु कतहु सन्देह होनि तँ पुछवो करथि।

ओ कहलनि तुम साहित्यिक बनना चाहते हो। आयुर्वेद मे घुस जाओ, कहीं भी रहोगे, रोटी मिल जायगी। तुमको इण्डोर मे काम दे देता हूँ। आयुर्वेद जोर लगा कर पढ़ो। हमरा उपवैद्य (कम्पाउडर) बना कय नियुक्त कय देलनि।

ताधरि हमरा आयुर्वेदक कोनो ज्ञान रहय नहिँ, परञ्च इण्डोर मे हमर दोसर मारवाड़ी ब्राह्मण जे सहकर्मी रहथि, से बड़ नीक लोक। काजो कोनो बड़ भारी नहिँ रहैक। कलकत्ताक प्रसिद्ध कविराज ज्योतिर्मय सेन आ हरि वक्ष जोशी आदि जे व्यवस्था पत्र लिखि जाथिन, तदनुसार दवाई दियैक, दू बेर दिन मे आ राति मे दू बेर। हमर सहयोगी हमरा दिनक कार्य देथि आ ओ रातिक कार्य सम्पादन करथि। दिनमे मारवाड़ी समाज मे पूजा-पाठ कय किछु अर्जन कयलेथि।

एम्हर हमरा परिवार केँ हमर पिताजी भिन्न कय देने रहथि। ओही समय १९४२ ई० मे आजाद हिन्द फौजक बमबाजी होमय लगलैक। कलकत्ता सँ लोक भागय लगलैक। हमहूँ गाम चल अयलहु। ताबत गाम मे कोशिक बाढ़ि आबय लगलैक। मलेरिया, कालाजार, विसूचिका आदि रोगक आक्रमणो संगहिँ संग। अस्पतालमे औषधि निर्माण सँ लय कय चिकित्सा धरिक ज्ञान प्राप्त छल, चिकित्सा कार्य मे संलग्न भय गेलहुँ, सफलतो भेटय लागल। एखनहुँ मन कहैत अछि, भगवान हमरा माध्यम सँ गामक परिसरक बड़ रक्षा कयलथिन। बिमारीक जे रूप, जे भयंकरता देखियैक आ जाहि उपाय सँ उपशम होइक ताहि पर लेख लिखि-लिखि अलीगढ़सँ प्रकाशित धन्वन्तरि पत्रिका मे पठबैत रहिऐक। अनेको लेख बरोबरि बहराइत रहलैक। १९५६ ई०

धरि चौदह वर्ष चिकित्सा करैत जलजीवन बिताओल। १९४४ ई० मे आयुर्वेदाचार्य कयलहुँ।

१९५६ ई० मे कोसी तटबन्धक कार्यवाही प्रारम्भ भेलैक। हमर प्रकृत प्रेम तँ साहित्य मे छल, अध्ययन, अध्यापन मे छल आ चिकित्सा कार्य तँ 'पर दुःखेन दुःखितः' बला छलैक। अतएव १९५६ ई० क प्रायः दिसम्बर मे बलुआ-निर्मली, सहर्षाक संस्कृतोच्च विद्यालय मे प्रधानाध्यापकक पद पर कार्य करय चल गेलहुँ। सहायक मिलाकय छौ व्यक्ति शिक्षक रही। हम प्रधान रहितहुँ सात घंटी पढ़बैत रही। संस्कृत हिन्दी आ मैथिली साहित्य सभ क्लास मे हमहीं पढ़बैत छलहुँ। संगहिँ संग कार्यालयीय कार्य तँ करहि पड़य। एकदम शान्त जीवन। परन्तु हमरा सक्रियता सँ प्रभावित सहयोगियो लोकनि कें सक्रिय रहय पड़नि। तकर परिणाम भेलैक, हमरा कार्यकालक कोनो छात्र असफल जीवन नहिँ बितबैत अछि। साधारण शिक्षक सँ लय कय प्रोफेसरक पद धरि आसीन अछि। १२ वर्ष धरि ओतय कार्य करैत १९६८ ई० मे गाम चल अयलहुँ, ता कोसी तटबन्धक प्रबन्ध सँ गाम मे उपजा-बाड़ी होमय लगलैक। दू-अढ़ाइ वर्ष आओर विद्यालय मे रहि सकैत छलियैक, परञ्च ओहि काल धरि बड़ कम वेतन भेटैत रहैक, दोसर परिश्रमक द्वारेँ अस्वस्थ रहय लगलियैक। तेँ छोड़य पड़ल। अपनहिँ अस्त-व्यस्त रहैत रही तेँ जेठ पुत्र कें नहिँ पढ़ा सकल छलिअनि, तेँ मिड्ल पासकऽ खेती बाड़ी मे लागि गेल छलाह। छोट बालक डिपलोमा कोर्स ओभर सियरी पास कय कार्य करय लागल रहथि। गाम आबि खेतीअहि मे मदति करैत रहलिअनि।

कविता सँ प्रेम आ कविता लिखबाक प्रवृत्ति प्रारंभहि सँ छल। महिसि चरबैत काल, कोनो काज करैत काल तुलसी, सूर आ विद्यापतिक गीत गाबी आ ओहि मे नव-नव चरण जोड़बाक प्रयत्न करी। पछाति किछु अपन ऊहि सँ गीत लिखलहुँ। ३०-३५ गोट गीतक एक संग्रह भाषा-भजन-भास्कर नाम सँ सुदर्शन प्रेस दरभंगा मे छपौने छलहुँ। जकर आब कोनो अता-पता नहिँ अछि। बहुत बाद मे ककरहु मुहेँ एक गीत सुनल-जकर शीर्षक रहैक, 'उधो बाबू कते दिन मे हमर प्राणेश औता औ...।

कलकत्ताक प्राचीन वंगवासी पत्रिकामे हमर एक कविता स्वाधीनता सँ सम्बद्ध छपल छल। ई बहुत पहिलुक बात थीक। मैथिली मे एक कविता मिथिला मोद मे प्रकाशित भेल छल, एक कविता मिथिला दर्शन मे, एक कविता वैदेही मे छपल छल। कोशीक जल-जीवन मे नाव पर चिकित्साक कार्य करैत रही, तखन जतय जतय जाइ आ कोशी नदीक जे विविध रूप-उच्छृंखल कल्लोल, भयंकर बनैत मोनि, कासक घोर जंगल, सूगरक हेंज, देखियैक, ताहि सँ प्रभावित भय किछु कविता लिखियैक, जकर संग्रह एक पोथीक आकार मे आबि गेल रहैक, से विद्यालयक अग्नि-काण्ड मे भस्मीभूत भय गेल। तेँ हमरा लग पहिलुक किछु नहिँ रहल।

गाम पर अएलाक बाद जखन अनुमानतः ७२ वर्षक अवस्था मे पहुँचि गेल रही, एक दिन एकाएक बड़ क्षोभ भेल, किछु लिखलहुँ नहिँ। लिखब कोना? पौत्र-पौत्री सभ घेड़ने। सोचल आसन मारि लिखि नहिँ सकैत छी। एको दू पद्य जँ लिखैत जाइ तँ कहियो पोथीक रूप लय सकैत छैक। ओहि दिन की फुरल की नहिँ, रुक्मिणी परिणय लिखबाक सूत्र पात कयलहुँ। रस्ता बाट मे, खेत-पथार मे आरिधुर पर जतय जखन रही, किछु सोचैत जाइ, गाम पर आबि लिखि ली, एना करैत तीन वर्ष मे पूर्ण कय लेलहुँ।

संयोग सँ किरणजी सँ भेंट भेल, कवि समाज मे। नीक जकाँ हुनकहि टा सँ परिचय छल, ओ पाण्डुलिपि देखलनि आ कहलनि मै० अकादमी पटना पठबिऔ, छपि जायत। हम रजिस्ट्री सँ पठाओल। किछु मासक बाद एक व्यक्ति सँ पुछलिअनि, प्रकाशनक की गति-विधि छैक? ओ आपस कय देलनि। हताश भय गेलहुँ। एक दिन प्रेम चन्द्र शास्त्री कहलनि, पाण्डुलिपि अमर जी केँ देखय दिअनु। हुनक पता से हो बुझा देलनि। हम एक दिन दरभंगा आबि सहृदय साहित्यकार पं० श्री चन्द्रनाथ मिश्रक डेरा पर गेलहुँ, ओ कार्य मे व्यस्त रहथि हुनका कहलिअनि, अपने एकरा देखिऔक, नीक भेलैक की अधलाह? ओ पाण्डु लिपि राखि लेलनि आ कहलनि, एखन एक मास हम नहिँ देखब, एक मास बाद अहाँ आयब। दू तीन मास बीत गेलैक, हुनक पत्र भेटल अहाँ आउ, हम अहाँक पाण्डुलिपि देखि चुकल छी। अयलहुँ, ओ

कहलनि अहाँक रचना उत्तम अछि, अहाँ मै० अकादमी पठविऔ। हम पहिलुक सभ बात कहलिअनि। ओ पाण्डु लिपि लय स्वयं अकादमी गेलाह। फलतः १९८२ ई० मे ओ प्रकाशित भेल। तें ओही पुस्तकक अन्त मे आत्म प्रसंग मे लिखलियैक—

सर्व सुगम नहिं हंसक घर अछि आइ.
मुह दुसैत मुँह दुस्सिक ध्वज उड़िआइ।

ताधरि लिखबाक व्यसन जकाँ भय गेल छल। तें प्रतिज्ञापाण्डव प्रबन्ध काव्य पुन प्रस्तुत कयलहुँ, अकादमीमे देलियैक, चयन गोष्ठी ओकरा अनुशंसितो कयलक, हमरा सँ अनुबन्ध पर हस्ताक्षरो करा लेल गेल। प्रेस मे जयतैक ओहि काल तत्कालीन सरकार अनुदान देब बन्द कय देलकैक।

एकर अतिरिक्त आकाशवाणी दरभंगा सँ प्रसारित आ मै० अकादमी, पटना क अकादमी पत्रिका मे प्रकाशित आ आनो कविताक संग्रह तरंगिणी' नाम सँ संगृहीत अछि।

हमर क्यो संमान करत, तकर कहियो स्वप्नहुँ मे कल्पना कयने नहिँ छल हैव, परञ्च से सम्मान मैथिलीक कृपा सँ हमरा भेटल। आश्चर्य! साँस्कृतिक परिषद मधेपुर, विद्यापति सेवा-संस्थान, दरभंगा, संकल्प लोक लहेरियासराय आ मैथिली अकादमी पटना सँ सम्मान हमरा नहि, मैथिलीक सम्मान कयल गेल।

हमर जीवन वस्तुतः बहुरुपिया रहल, तें उपनामो बहुरुपिया। गाम मे एखनहुँ ज्योतिषीक काज करैत छियैक, तें ज्यौतिषी जी, कलकत्तामे कवि गोष्ठी मे हिन्दीक कविता पढ़ियैक तें कविजी, चिकित्साक काज करैत रहियैक तें कविराज जी, विद्यालय पर अध्यापन सँ पण्डित जी, आ एखन कविताक कारणें अज्ञात जी उपनाम सँ अभिहित छी।

हम तुलसीदासक ऋणी छिअनि, जनिक रामायण हमरा संस्कृत मे प्रवेश करबाक शक्ति प्रदान कयलक। पण्डित प्रकाण्ड त्रिलोक नाथ मिश्रक ऋणी छिअनि, जनिक प्रतिभा हमरा अध्ययन मे सौविध्य प्रदान कयलक आ आगू बढ़ौलक। हम मारवाड़ी विद्वान हरिवक्ष जोशीक ऋणी छिअनि, जनिक आश्रय

हमरा जीवन मे प्रगति प्रदान कयलक। योग्यतम साहित्यकार पं० श्री चन्द्र नाथ मिश्र 'अमर'क ऋणी छिअनि, जनिक प्रयत्न अहैतुक प्रयत्न, हमरा कवि समाजक पंक्तिमे स्थान देऔलक।

हमरा जखन आर्थिक कष्टक अनुभव करय पड़ैत अछि, तखन दू व्यक्तिक स्मरण होइछ, विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पतालक मैनेजर विश्वनाथ प्रसाद सिंहक आ विद्वद्वर वैद्य हरिवक्ष जोशीक। अस्पतालछोड़ि गाम चल अयलहुँ आ कलकत्ताक वातावरण शान्त भेलैक तखन विश्वनाथ प्रसाद सिंह लिखलनि, पण्डित जी, आप आ जाइये, आपका स्थान सुरक्षित है। नहिँ गेलहुँ। जोशी जी अपन फराक कार्यालय खोललनि कलकत्ता मे आ जयपुर मे। हमरा लिखलनि, तुम आओ, कलकत्ता या जयपुर जहाँ रहना चाहोगे, रह सकते हो। नहिँ गेलहुँ। से एखनहुँ अखरै अछि। अस्तु। हमरा तीन सन्तान दू बालक एक कन्या। ज्येष्ठक नाम श्री रमानन्द झा, छोट श्री इन्दिरानन्द झा जे दरभंगा मे घर बनौने छथि। कन्या दिवंगता, सन्तान सभ जीवित छनि। सम्प्रति हमर अवस्था अठासी अछि।

आत्म-जीवन-यात्रेयं लिखिताऽस्त्यादितो मया।
वयस्यष्टाशीतितमे वर्त्तमानेन साम्प्रतम् ॥

श्री बबुआजी झा 'अज्ञात'
२१-४-६१

सद्यः रचित

हमरा अन्त सम्हारब माय !

नहिँ हम जनलहुँ जनम कोन विधि
अपन सुधारब, माय !
हमरा अन्त सम्हारब, माय !

२

जीवन मे भल काज न कयलहुँ
अशुभ - वृत्ति सँ बाज न अयलहुँ
माया - मन्दमतिकसब दुर्गुण
दोष विसारब, माय !
हमरा अन्त सम्हारब माय !

३

अन्त वयस अछि दुर्बल काया
बड़ दुखदायक अन्न पराया
दुःखक दिन सँ पहिनहिँ पुत्रक
खेल उसारब, माय !
हमरा अन्त सम्हारब, माय !

४

हमरा अग्रिम नर - तनु - धारी
सदय बनायब मंगलकारी
भक्तिक चन्द्र-प्रभा सँ हृदयक
तम अपसारब, माय !

हमरा अन्त सम्हारब, माय

५

डाकू, चोर - चुहार, लुटेरा
मन - खाण्डव मे लेत बसेरा
सर्व - जयी अर्जुन सन पौरुख
उर अवतारब, माय !
हमरा अन्त सम्हारब, माय !

६

रामकृष्ण सन सन्त मिलबितहुँ
ज्ञानक दिव्य कमल विकसबितहुँ
कामविमुख हमरा अपगर्वक
बाट धरायब माय !
हमरा अन्त सम्हारब माय !

७

जीवन मे हम दुर्भगतर छी
कामक दामक प्रिय किंकर छी
सुमति विवेकानन्दक सन दय
नहिं उद्धारब माय ?
हमरा अन्त सम्हारब, माय !

८

भक्तिक जल सँ मन निर्मल कय
नाम - जपक श्रद्धा अविचल दय
दुस्तर भव सागर सँ कृपया
पार उतारब, माय
हमरा अन्त सम्हारब माय !

(आकाशवाणी, दरभंगासँ प्रसारित)

—०—

'श्री अज्ञात'

श्री बबुआजी झा 'अज्ञात'

जन्म—चैत्र शुक्ल नवमी १३११ साल

(दि० २६ मार्च १९०४ ई०)

गाम—बाथ, भाया—मधेपुर,
जिला—मधुबनी ।

कृति—रुक्मिणी-परिणय (महाकाव्य)
प्रतिज्ञा पाण्डव (महाकाव्य)

"कवि अपन प्रथम वयसमे कोशी अञ्चलक अभिशप्त भूमिपुत्रक रूपमे पशुचारण एवं कोदारि-खुरपीक संचालन करैत खेतक आरिपर बैसल कविता गुनगुनाइत रहल छथि। प्रकृतिक मुक्त वातावरणमे मिथिलाक खेतिहरक बाढ़ि-रौदीक भिजल-टटायल जीवनक कटु अनुभव करैत प्रथम मधु वयस बितबैत ओ तखनहु कविताक करुण तान लगबैत रहल छथि। अथच ओही सुर-धुनिक प्रच्छन्न प्रवर्तनासँ अपन बीसीक बाद ओ विद्यारंभ कय जाहि श्रमेँ आचार्यत्व प्राप्त कयलनि, बिद्यालयमे विद्यादान करैत साहित्य-सरस्वतीक साधना कयलनि, ओकरे सिद्धि स्वरूप अपन अवकाश-जीवनकेँ सार्थक करैत काव्य-रचनामे संलग्न छथि. ई ज्ञात कय एहि 'अज्ञात'-उपनामा कवि-अग्रणी पं० बबुआजी झाक व्यक्तित्वक प्रति एवं अद्यतन वृद्ध वयसहुमे हिनक उन्मीलत्प्रतिभा, व्यापक व्युत्पत्ति एवं प्रतिबद्ध अभ्यस्तता परेखि ककर मस्तक श्रद्धानत नहि होइछ ? एहू परिणत बयसमे स्फूर्तिशील तनल तनु धवल शिर श्माम-अभिराम कर्मठ दण्डी व्यक्तित्वक एवं हिनक सामयिकतासँ ओतप्रोत सांस्कृतिक अस्मितासँ संभृत रचना-सौष्ठवक कृतित्वकेँ अभिनन्दित करैत कृतकृत्य छी।"

श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन'